वर्ष : 5, अंक : 19-20 (संयुक्तांक)

जुलाई-दिसम्बर 2021

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

विशेष :

गढ़वाली लोक संस्कृति और भाषा

मराठी भाषा का उद्भव, विकास व इतिहास

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

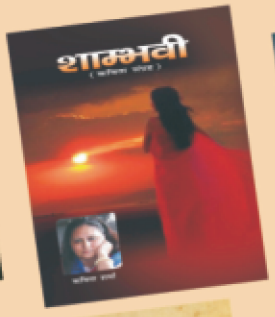

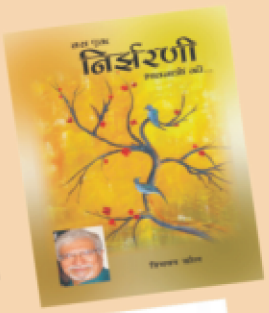

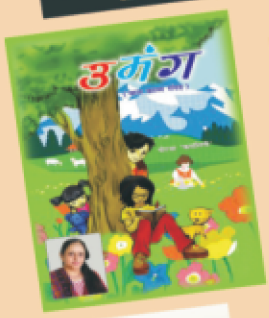

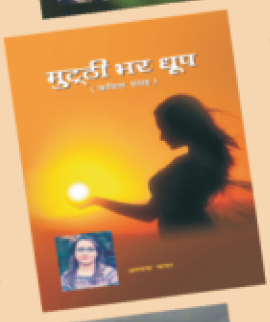

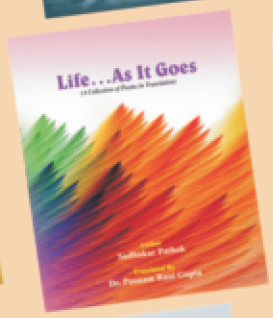

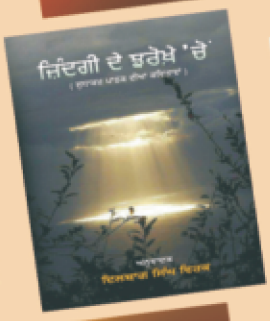

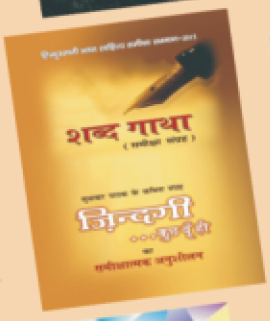

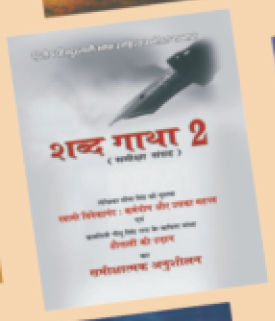

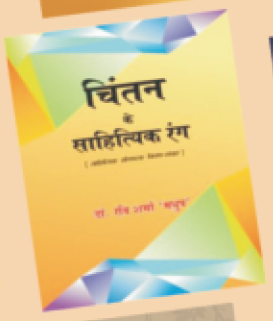

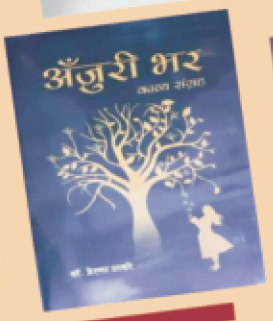

वर्ष : 5, अंक : 19-20 (संयुक्तांक)

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

मूल्य : 30 रुपये

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक
सुधाकर बाबू पाठक

प्रबन्ध सम्पादक : **विजय कुमार शर्मा**
परामर्श सम्पादक : **सुरेखा शर्मा**
संयुक्त सम्पादक : **राजकुमार श्रेष्ठ**
सह सम्पादक : **सागर समीप**
उप सम्पादक : **सरोज शर्मा**
: **सुषमा भण्डारी**
: **डॉ. सोनिया अरोड़ा**
: **पुलकित खन्ना**
सम्पादकीय सलाहकार : **डॉ. वनीता शर्मा**
: **गरिमा संजय**
विधि सलाहकार : **अमरनाथ गिरि**
वित्तीय सलाहकार : **राम सिंह मेहता**

कार्यालय :
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी
3675, राजा पार्क, रानी बाग, दिल्ली-110034
ई-मेल : *info@hindustanibhashaakadami.com*
hindustanibhashabharati@gmail.com
वेबसाइट : *www.hindustanibhashaakadami.com*
सम्पर्क सूत्र : 09873556781, 09968097816

- पत्रिका में प्रकाशित लेखों में लेखकों के अपने विचार हैं। प्रकाशक का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- सभी विवादों का निपटारा दिल्ली/नई दिल्ली की सीमा में आने वाली सक्षम अदालतों और फोरमों में ही किया जाएगा।
- सम्पादन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक और अव्यावसायिक है।

प्रकाशक, सम्पादक व मुद्रक सुधाकर बाबू पाठक द्वारा स्वामी हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ट्रस्ट, 3675, राजा पार्क, शकूर बस्ती, दिल्ली-110034 के लिए प्रकाशित और सन्नी प्रिन्टर्स, बी-234, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित।

विषय सूची

संपादकीय :
''भाषणों से नहीं आचरण से बचेंगी भारतीय भाषाएँ'' 04

रिपोर्ट :
पुस्तक लोकार्पण, परिचर्चा एवं लेखकों का सम्मान समारोह -गरिमा संजय 05
'भाषा गौरव शिक्षक सम्मान समारोह' -सुरेखा शर्मा 07

साक्षात्कार :
डॉ. आर.के. पालीवाल, भारतीय राजस्व सेवा अधिकारी 09
श्री प्रेमपाल शर्मा, शिक्षाविद, लेखक, साहित्यकार 12

चमत्कार लोक भाषाओं का
गढ़वाली लोक संस्कृति और भाषा -डॉ. आशा बिष्ट 17
मराठी भाषा का उद्भव, विकास व इतिहास -डॉ. विनीता शुक्ला 20

असम के प्रवासी भाषिक समुदाय और हिन्दी -डॉ. जाहिदुल दीवान 22

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विश्व पटल पर हिन्दी भाषा... -भागीनाथ वाकले 25

युवा मत :
संस्कृत भाषा का संरक्षण जरूरी -शिवांशु राय 30
क्या सचमुच हिन्दी बढ़ रही है ? -नन्दिनी सोनी 32

ब्रिटिश कालीन शिक्षा और भारतीय शिक्षा आयोग का योगदान
-डॉ. विनीता शुक्ला 34

कहीं चलन न बन जाए रोमन लिपि में हिन्दी का लिखा जाना
-डॉ. अमरीश सिन्हा 36

अवधी लोकगीतों का शब्द सामर्थ्य -डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय 41

भाषा शिक्षण पर शिक्षकों का नजरिया
-रजनी द्विवेदी एवं शोभा शंकर नागदा 43

भाषाई एकात्मता की प्रतिनिधि बनी हिन्दी -डॉ. अरुण प्रकाश 47

भाषा की सामाजिक निर्मिति -प्रकाश चन्द्र 48

संचार माध्यमों में बदलते-बिगड़ते बोल -श्रीमती संतोष बंसल 50

हिन्दी-दिवस बनाम उपदेश-दिवस-हिन्दी का राजनीतिकरण और शुद्धिकरण -मो. नाजिम अंसारी 53

स्थानीय बोली राजस्थानी-एक परिचय -डॉ. अल्पना शर्मा 55

हिन्दी के विकास में विदेशों की हिन्दी प्रचार संस्थाओं का योगदान
-डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव 'सागर' 57

रिपोर्ट :
हिन्दी दिवस के अवसर पर दिल्ली स्थित विभिन्न विद्यालयों की रिपोर्ट 60
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एवं व्यंग्य यात्रा के तत्वावधान में 'व्यंग्य उत्सव' 62
डॉ. श्रद्धा बाजपेई की पुस्तक 'छिन्नमस्ता' का लोकार्पण एवं 'आगमन काव्य गोष्ठी' 63

शिक्षा में हिन्दी भाषा का महत्व -श्रीमती मणि बेन द्विवेदी 65

शिक्षक की कलम से : -श्री धर्मेन्द्र पोद्दार 66

सम्पादकीय

''भाषणों से नहीं आचरण से बचेंगी भारतीय भाषाएँ''

सुधाकर पाठक
सम्पादक एवं अध्यक्ष,
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

बंधुवर ! एक संस्था के रूप में हम विभिन्न माध्यमों से लगातार इस महत्वपूर्ण तथ्य को सामने रखते आ रहे हैं कि यदि हमें हमारी भाषाओं को बचाए रखना है तो उन्हें अपने आचरण में अपनाना होगा । जब तक भाषाएँ हमारे आचार-विचार और व्यवहार में प्रयुक्त होती रहेंगी तब तक भाषाओं का प्रचार-प्रसार और संरक्षण स्वत: ही होता रहेगा, फिर इन्हें बचाने के लिए न तो भाषणों की आवश्यकता ही होगी और न ही आंदोलनों या सम्मेलनों की । वर्तमान में दु:ख की बात यह है कि भाषाओं के संरक्षण के सम्बन्ध में हम बहुत ही कठिन दौर से गुजर रहे हैं । हम कभी आकलन ही नहीं करते कि हमारे सामने भाषाओं का कितना बड़ा संकट है । विश्व में लगभग 6000 भाषाएँ बोली जाती हैं । प्रत्येक भाषा का अपना एक भाषिक अनुशासन होता है । यह भाषिक अनुशासन उस भाषा के व्याकरण, लिपि एवं रचना में निहित होता है । यही भाषा की अपनी मौलिकता होती है, किन्तु जाने-अनजाने में हम अपनी भाषाओं की मौलिकता को नष्ट कर रहे हैं । भाषाओं के संकटग्रस्त होने की प्रक्रिया को समझने के लिए आवश्यक है कि हम जानें कि शब्द किसी भी भाषा का प्राण होते हैं और एक-एक शब्द का निर्माण कई वर्षों के कठिन श्रम व जटिल प्रक्रिया के बाद होता है। समाज में उसकी स्वीकार्यता और मानकीकरण में भी वर्षों का श्रम लगता है । विश्व की अनेकों भाषाओं में सबसे अधिक शब्द भण्डार भारतीय भाषाओं में हैं । किन्तु दुखद पक्ष यह है कि हम बहुत तेजी से अपने शब्दों को खो रहे हैं । कड़े शब्दों में कहें तो हम अपने शब्दों की हत्या कर रहे हैं । हम अपने घर में, परिवार में और विद्यालय में बच्चों को अपनी भाषाओं के शब्दों से विमुख कर विदेशी शब्द सिखा रहे हैं । यदि हिन्दी भाषा की बात करें तो बच्चों को हिन्दी के बहुत से आसान शब्दों का ज्ञान ही नहीं है । उदहारण के लिए हम अपने बच्चों को सिखा रहे हैं- गुड मॉर्निंग, गुड आफ्टरनून, गुड नाईट, गुड बाय, वेलकम, प्लीज, थैंक्यू, कॉन्ग्राचुलेशन, स्पीच, एग्जाम, क्वेश्चन, आंसर, हार्ड, सिंपल, होमवर्क, रेस्ट, कम्फर्टेबल, पास, फेल, फर्स्ट, सेकेण्ड, थर्ड, फोर्थ, डिस्टिंक्शन, एवरेज, क्यू, सीरिज, वेलडन, आल द बेस्ट, टीचर, क्लासरूम, लाइट, फैन, टेबल, चेयर, डिसिप्लिन आदि । जबकि हिन्दी में इनके आसान शब्द उपलब्ध हैं जैसे नमस्ते/प्रणाम, शुभ रात्रि, स्वागतम, कृपया, धन्यवाद/आभार, बधाई, वक्तव्य, परीक्षा, प्रश्न, उत्तर, कठिन, सरल/आसान, गृहकार्य, आराम, आरामदायक, प्रथम/पहला, द्वितीय/दूसरा, तृतीय/तीसरा, चतुर्थ/ चौथा, अव्वल, औसत, पंक्ति, श्रेणी, शाबास, शुभकामनाएं, शिक्षक, कक्षा, बिजली, पंखा, मेज, कुर्सी, अनुशासन आदि । लेकिन जब दैनिक जीवन में निरंतर विदेशी शब्दों का ही प्रचलन बढ़ने लगेगा तो हमारी आम बोलचाल की भाषा से हमारे मौलिक शब्द विलुप्त होते चले जायेंगे । कालांतर में यह शब्द विलुप्त हो जायेंगे और फिर अगली पीढ़ी तक यह शब्द पहुंचेंगे ही नहीं । हमारी अगली पीढ़ी सीधे विदेशी शब्दों को सीख रही होगी और उसे लगेगा कि यही हिन्दी के मौलिक शब्द हैं । यह केवल हिन्दी भाषा के साथ नहीं बल्कि सभी भारतीय भाषाओं के साथ हो रहा है । यह तो कुछ ही शब्द हैं जो आंशिक रूप में समाज में, पुस्तकों में और विभिन्न दस्तावेजों में सुरक्षित हैं, किन्तु यही क्रम चलता रहा तो भविष्य में यह भी विलुप्त हो जाएंगे । ऐसे कई शब्द हैं जो हम विगत में खो चुके हैं और कुछ खोने के क्रम में हैं । भाषाएँ इसी तरह विलुप्त होती हैं । पहले शब्द बदल दिए जाते हैं फिर वाक्यांश बदल दिए जाते हैं और अंत में उस भाषा की लिपि बदल दी जाती है । भाषाओं को मारने का काम घरों से शुरू होता है, उसके बाद विद्यालयों से, अखबारों से, फिर अन्य संचार माध्यमों से। भारत में 121 आधिकारिक भाषाएँ विद्यमान हैं जिनके बोलने वालों की संख्या दस हजार से अधिक हैं और 22 ऐसी भाषाएँ हैं जिनको संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया है । वर्तमान समय में कई सौ लिपिबद्ध और गैर-लिपिबद्ध भारतीय भाषाएँ संकटग्रस्त भाषाओं की श्रेणी में सूचीबद्ध हैं । इसी तरह आज की नई पीढ़ी हिंगलिश और रोमन में लिखने को एक फैशन के रूप में ले रही है जबकि यह भाषा के लिए हानिकारक है । यह भाषा को दूषित बनाने का काम करती है । इस प्रवृत्ति से भाषा की मौलिकता नष्ट होती है । दक्षिण अफ्रीका की भाषा में रोमन लिपि का अधिक प्रभाव है । रोमन लिपि के प्रभाव में अपनी भाषा को खोने वाले देशों में वियतनाम भी एक देश है। 'चू हान' लिपि से बदलकर 'चू नोम' लिपि होते हुए अठारवीं शताब्दी में पोर्जुगिज मिशनरियों द्वारा बदली हुई 'चू क्यूओक्नु' लिपि में वियतनामी भाषा को लिखा जा रहा है । कम्बोडिया में विद्यालयों के पाठ्यक्रम तक रोमन लिपि में लिखा जाने लगा था । बाद में कम्बोडिया की सरकार ने अपनी लिपि का संरक्षण करके अपनी भाषा को इस खतरे से उबार लिया । हमें भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन और उसके प्रचार-प्रसार के लिए बच्चों को भारतीय शब्दों से जोड़ना होगा । हिंगलिश और रोमन के प्रभाव से भाषाओं को बचाना होगा । पारिवारिक, सामाजिक और विद्यालय स्तर पर बच्चों को अपनी भाषा पर गर्व करने और उसे अपने आचरण में अपनाने के लिए प्रेरित करना होगा । बच्चों को बताना होगा कि आप चाहे कोई भी विदेशी भाषा सीखें या बोलें किन्तु आपकी विद्वता भाषा के अनुप्रयोग से नहीं बल्कि आपके मौलिक चिंतन से मापी जाती है । विश्व के सभी भाषाविदों का मत है कि व्यक्ति अपनी भाषा में ही मौलिक चिंतन कर पाता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा में ही सोचता है, विचार करता है और नवीन कल्पनाएँ करता है । यहाँ तक कि हम सपने भी अपनी भाषा में देखते हैं । यदि हम किसी दूसरी भाषा में संवाद करते हैं या विचार करते हैं तो वह सभी कार्य अनुवाद के स्तर पर हो रहे होते हैं और हमारा मस्तिष्क बहुत तेजी से उसका अनुवाद कर रहा होता है । हम विश्व की किसी भी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान हो सकते हैं, किन्तु उस भाषा में हम कदाचित सहज नहीं हो सकते । मनुष्य अपने सुख, दु:ख, चिंता, तनाव, खुशी, ईर्ष्या, इच्छा, कामना, सहानुभूति आदि संवेदनात्मक भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अपनी भाषा में ही सहज महसूस करता है । इति शुभम् ...

रिपोर्ट

पुस्तक लोकार्पण, परिचर्चा एवं लेखकों का सम्मान समारोह

पुस्तक: 'प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं के समक्ष चुनौतियाँ'

'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' की नि:शुल्क पुस्तक प्रकाशन योजना के अंतर्गत अकादमी द्वारा प्रकाशित भाषा शिक्षकों के शोधपरक लेखों का संग्रह 'प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं के समक्ष चुनौतियां' का रविवार, 8 अगस्त 2021 को अकादमी के सभा-कक्ष में लोकार्पण सम्पन्न हुआ। दीप प्रज्ज्वलन एवं सामूहिक राष्ट्रगान से कार्यक्रम का विधिवत शुभारंभ किया गया। समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में हिन्दी अकादमी, दिल्ली के सचिव डॉ. जीतराम भट्ट एवं अध्यक्ष के रूप में भारतीय योग संस्थान के वरिष्ठ सलाहकार श्री शरत चंद अग्रवाल जी उपस्थित थे।

अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक के सान्निध्य में यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। मंचासीन अतिथियों द्वारा पुस्तक एवं 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका के नवीन अंक का लोकार्पण किया गया। अपने स्वागत वक्तव्य में श्री सुधाकर पाठक ने कहा कि, हमें भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार करने के लिए विद्यालयी स्तर से ही पहल करना चाहिए क्योंकि विद्यालय वो माध्यम है जहाँ हमारी भाषाएँ अंकुरित होती हैं। घर-परिवार पर बच्चे जो भाषा बोलते या सीखते हैं वो केवल संवाद के स्तर तक ही सीमित होती हैं, किन्तु विद्यालयों में औपचारिक शिक्षा के माध्यम से बच्चे उन भाषाओं को सीखते हैं। विद्यालयी स्तर से ही बच्चों में भाषा की नींव मजबूत होती है। किन्तु विडम्बना यह है कि विद्यालय स्तर से ही भारतीय भाषाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय हैं। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं की समस्याओं को लेकर जो सबसे ज्यादा प्रभावित हैं, वो शिक्षक वर्ग ही है।

भाषा शिक्षकों को आए दिन अपने विद्यालय परिसर में, समाज में और परिवार में अनेक समस्याओं से जूझना होता है। एक तो वे सीधे रोजगार से जुड़े हुए हैं और दूसरा विद्यालयों में भारतीय भाषाओं की वास्तविकता से वे भली-भांति परिचित भी हैं, इसलिए बड़े-बड़े विद्वानों के लेखों के बदले इस योजना के लिए हमने विभिन्न उप-शीर्षकों में दिल्ली और एनसीआर के विद्यालयों में अध्यापन करने वाले भारतीय भाषाओं के शिक्षकों के लेखों को आमंत्रित किया। इस योजना के तहत 150 से अधिक लेख हमें प्राप्त हुए जिनमें से 37 चयनित लेखों को पुस्तक में सम्मिलित किया गया है। शिक्षक वर्ग भारतीय भाषाओं की चुनौतियों के वास्तविक भुग्त-भोगी हैं, इसीलिए उनके अनुभव, चिंतन और सुझावों से भरे हुए शोधपरक लेख भारतीय भाषाओं की स्थिति के अनेक पटों को खोलने में सहायक सिद्ध होंगे। इसी विषय को केंद्रित करते हुए हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ने इस संदर्भ पुस्तक को प्रकाशित किया। इस पुस्तक का उद्देश्य ही विद्यालय स्तर पर भारतीय भाषाओं के समक्ष की चुनौतियों को सामने लाना है और इनको चिंतन में सम्मिलित कराना है।

गरिमा संजय

मंचासीन अतिथियों ने भी भारतीय भाषाओं की विडंबनाओं, वैश्विक स्थिति एवं भारतीय भाषाओं की चुनौतियों जैसे जीवंत विषयों को उठाया। इसी क्रम में मंचासीन अतिथियों द्वारा उपस्थित लेखकों (पुस्तक में सम्मिलित भाषा शिक्षकों) को सम्मानित किया गया। सम्मान स्वरूप लेखकों को पुस्तक की प्रति एवं स्मृति चिह्न भेंट किये गए। इस अवसर पर हिन्दुस्तानी भाषा भारती पत्रिका के संयुक्त संपादक श्री राजकुमार श्रेष्ठ ने मातृभाषा शिक्षा की आवश्यकता एवं पुस्तक की विशेषताओं पर अपना मंतव्य रखा। वहीं पत्रिका के उप संपादक एवं युवा पत्रकार श्री पुलकित खन्ना ने हिन्दी भाषा की वर्तमान स्थिति की चर्चा की। समारोह में उपस्थित भाषा शिक्षकों एवं लेखकों ने भी अपने उद्बोधन में शिक्षण से संबंधित अपने-अपने अनुभवों, समस्याओं एवं सुझावों को साझा किया। कार्यक्रम का संचालन अकादमी की वरिष्ठ सलाहकार एवं पत्रिका की कार्यकारी संपादक सुश्री सुरेखा शर्मा ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन पत्रिका के प्रबंध संपादक श्री विजय शर्मा ने किया। इस अवसर पर पत्रिका की संपादन सलाहकार डॉ वनीता शर्मा की विशेष उपस्थिति रही।

पुस्तक लोकार्पण, परिचर्चा एवं लेखकों का सम्मान समारोह
कुछ छायाचित्र

रिपोर्ट

'भाषा गौरव शिक्षक सम्मान समारोह'

दिल्ली प्रदेश एवं गुरुग्राम (हरियाणा) के 150 विद्यालयों के 08 भारतीय भाषाओं के लगभग 350 भाषा शिक्षकों के सम्मान में आयोजित हुआ समारोह .

रविवार, 19 सितंबर, 2021 को हिन्दी अकादमी, दिल्ली एवं हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के संयुक्त तत्त्वावधान में भारतीय भाषाओं के शिक्षकों को सम्मानित किया गया । ज्ञात हो कि हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा पिछले पाँच वर्षों से 10 वीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा में भारतीय भाषाओं में 90% से अधिक अंक प्राप्त करने वाले मेधावी विद्यार्थियों को सम्मानित किया जा रहा है । इसी के साथ ही इस कड़ी में इन मेधावी विद्यार्थियों के भाषा शिक्षकों को भी 'भाषा गौरव शिक्षक सम्मान' से सम्मानित किया जाता है ।

पिछले कई वर्षों से हजारों मेधावी छात्रों को 'भाषा रत्न', 'भाषा दूत' सम्मानों से सम्मानित किया गया है । इसके साथ ही प्रत्येक वर्ष सर्वाधिक प्रविष्टियों वाले विद्यालय को 'भाषा प्रहरी सम्मान' से सम्मानित किया जाता है । सर्वाधिक प्रविष्टि भेजने वाले विद्यालय के रूप में 'कुलाची हंसराज विद्यालय', अशोक विहार ने इस वर्ष भी अपनी उपलब्धि को बनाए रखा । 'भाषा प्रहरी सम्मान' से कुलाची हंसराज विद्यालय को सम्मानित किया गया । पिछले वर्षों में इस सम्मान के क्रम में इन छात्रों के सैकड़ों शिक्षकों को भी सम्मानित किया गया है । सैंट कोलंबो पब्लिक स्कूल, पीतमपुरा के सभागार में हुए इस भव्य समारोह की अध्यक्षता सुविख्यात हास्य कवि एवं चिंतक पद्मश्री सुरेंद्र शर्मा ने की । समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में बाहरी जिला, दिल्ली के अतिरिक्त पुलिस उपायुक्त श्री आनंद कुमार मिश्रा तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. जीतराम भट्ट, सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली तथा श्री चमनलाल शर्मा, चेयरमेन, सैंट कोलंबो पब्लिक स्कूल ने मंच की शोभा बढ़ाई । हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक के सानिध्य में हुए इस सम्मान समारोह का शुभारंभ अतिथियों द्वारा दीप प्रज्ज्वलन एवं सामूहिक राष्ट्रगान से हुआ । इस अवसर पर हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के 'संस्था गीत' 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी से आओ जुड़ जाएं' का विमोचन हुआ । इस गीत की लेखिका अकादमी की पदाधिकारी श्रीमती सुषमा भंडारी तथा गायिका श्रीमती मधुमती आचार्य हैं । इस अवसर पर सैंट कोलंबों पब्लिक स्कूल के चेयरमेन श्री चमनलाल शर्मा ने उपस्थित सभी शिक्षकों को बधाई दी और अपनी भाषाओं से जुड़े रहने का संदेश दिया । डॉ. जीतराम भट्ट ने अपने वक्तव्य में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी और उसके अध्यक्ष के कार्यों को सराहा तथा कहा कि यह संस्था सरकारी संस्था के

सुरेखा शर्मा

कार्यों में न केवल सहयोग कर रही है बल्कि उससे बेहतर योजनाओं का कार्यान्वन कर रही है । मुख्य अतिथि के रूप में युवा पुलिस अधिकारी श्री आनंद कुमार मिश्रा ने कहा कि हमारी भाषाओं और हमारी संस्कृति की जड़ें इतनी गहरी हैं कि इनको कोई नहीं मिटा सकता है । इस अवसर पर अपने हिन्दी भाषा प्रेम को प्रदर्शित करते हुए उन्होंने कई वरिष्ठ साहित्यकारों की पंक्तियों को रेखांकित किया । श्री आनंद कुमार मिश्रा जी ने कहा कि वह संस्था के इस तरह के महती आयोजनों से भविष्य में भी अवश्य जुड़ना चाहेंगे । उपस्थित शिक्षकों ने उनके उद्‌बोधन को बहुत सराहा । अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में श्री सुरेंद्र शर्मा जी ने अपने गंभीर कविता पाठ से श्रोताओं के चिंतन को आमंत्रित किया, साथ ही वर्तमान समय में हिन्दी के प्रति सरकारी रवैये की ओर ध्यान आकर्षित किया । उन्होंने कहा कि जिस दिन हिन्दी संसद की भाषा बन जाएगी उसके बाद फिर किसी हिन्दी दिवस या हिन्दी सम्मेलनों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी ।

कोरोना नियमावली के कारण सीमित संख्या में शिक्षकों को आमंत्रित किया गया था । इस समारोह में कुल 208 शिक्षकों को 'भाषा गौरव शिक्षक सम्मान' से सम्मानित किया गया । लगभग तीन घंटे चले इस सम्मान समारोह में श्री सुरेंद्र शर्मा जी प्रारंभ से लेकर समारोह के अंत तक सभी शिक्षकों को पूर्ण ऊर्जा से अपने कर कमलों से सम्मानित करते रहे । अपने चहेते कवि के हाथों सम्मानित होते हुए सभी शिक्षक/शिक्षिकाएं बहुत उत्साहित और प्रसन्न थीं । श्री चमनलाल शर्मा जी समारोह के अंत तक जुड़े रहे और शिक्षकों को सम्मानित करते रहे । दो सौ से अधिक शिक्षकों को एक मंच पर एक ही समारोह में सम्मानित करने का कार्य बहुत ही मुश्किल था, लेकिन सबके सहयोग से सफलतापूर्वक पूर्ण हुआ । इस आयोजन में जनमत की पुकार, दैनिक के संपादक श्री आर.के. जयसवाल को स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया गया ।

इस सफल आयोजन में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के पदाधिकारी श्री विजय शर्मा, श्री राजकुमार श्रेष्ठ, सुश्री सुरेखा शर्मा, सरोज शर्मा, सुषमा भंडारी, डॉ सोनिया अरोड़ा, डॉ. गरिमा संजय, डॉ. वनीता शर्मा, सुश्री राज वर्मा, श्रीमती सुखवर्षा पाठक ने महती भूमिका निभाई ।

'भाषा गौरव शिक्षक सम्मान समारोह'
कुछ छायाचित्र

साक्षात्कार : डॉ. आर.के. पालीवाल, भारतीय राजस्व सेवा अधिकारी, सेवानिवृत्त प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त, आयकर विभाग, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़

बहुत लंबी गुलामी के बाद हमारे समाज में अंग्रेजी के प्रति जरूरत से ज्यादा आकर्षण बन गया है

डॉ. आर.के. पालीवाल

मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) जिले के बरला गाँव में सन् 1961 में जन्में डॉ. आर. के. पालीवाल गाँधीवादी विचारक, चिंतक, प्रबुद्ध साहित्यकार, डॉक्यूमेंट्री फिल्म निर्माता, कई आदर्श ग्रामों के संस्थापक, कर्मयोगी एवं समाजसेवी हैं । समाज के गौरव तथा युवाओं के प्रेरणा स्रोत डॉ. आर. के. पालीवाल ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा गाँव बरला में पूरी की, उसके बाद मेरठ विश्वविद्यालय से एम.एस.सी, वनस्पति विज्ञान, एम.फिल और पीएच. डी. की । डॉ. पालीवाल भारतीय राजस्व सेवा (आई.आर.एस) के 1986 बैच के अधिकारी हैं । आप तीन दशक से भी ज्यादा समय से भारतीय राजस्व सेवा के दौरान विभिन्न प्रदेशों के कई शहरों में शीर्षस्थ पदों पर रहते हुए देश के सभी क्षेत्रों में सेवाएं दे चुके हैं ।आप आयकर विभाग के सर्वोच्च पद प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त जैसे गरिमामयी पद पर भी सुशोभित रहे हैं । अहीर डिग्री कॉलेज, रिवाड़ी (हरियाणा) में दो वर्ष प्रवक्ता और भारतीय वन सेवा (आई.एफ.एस) में दो वर्ष की सेवा देने के बाद आप भारतीय राजस्व सेवा में साढ़े तीन दशक लंबी सेवाएं प्रदान कर चुके हैं । आप आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और उड़ीसा के डीजी पद पर भी रहे हैं, और मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त पद से मार्च 2021 में सेवानिवृत हुए हैं । महात्मा गाँधी, विवेकानन्द और अम्बेडकर के आदर्श जीवन मूल्यों का आपके जीवन में गहरा प्रभाव है । समसामयिक महत्त्वपूर्ण विषयों पर चिंतन-मनन करने वाले डॉ. पालीवाल जी हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित लेखक हैं । 'अंग्रेज कोठी' और 'बांसपुर की उत्तर कथा' नाम से दो उपन्यास, तीन कथा संग्रह, तीन व्यंग्य संग्रह, 'देवदारों के बीच' कविता संग्रह आपकी प्रकाशित साहित्यिक पुस्तकें हैं । आपके द्वारा आयकर पर लिखी गई पुस्तक को भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है । लम्बे शोध के बाद लिखे गए नाटक 'कस्तूरबा' और 'गाँधी की चार्जशीट' का कई नाट्यों संस्थाओं द्वारा मंचन भी किया जा रहा है । हाल ही में आपकी 'गांधी : जीवन और विचार', 'विवेकानंद: जीवन और विचार', 'अम्बेडकर : जीवन और विचार' पुस्तक त्रयी प्रकाशित हुई है । प्रकृति प्रेमी और समाजसेवी डॉ. पालीवाल समग्र ग्राम विकास और जैविक खेती अभियान से गहरे जुड़े हुए है । गाँधीवादी विचारों का प्रचार-प्रसार एवं युवाओं को समाजसेवा के कार्यों से जोड़ना आपकी दैनिक दिनचर्या में सम्मिलित हैं । वर्तमान में आप 'कोरोना मुक्त गांव: कोरोना मुक्त भारत अभियान' एवम 'स्वस्थ, शिक्षित एवम समृद्ध गांव' के राष्ट्रीय संयोजक के रूप में सामाजिक कार्यों में आबद्ध हैं । आपके नेतृत्व- निर्देशन में देश भर में सक्रिय समाजसेवी संस्थाओं, डॉक्टर्स, प्रशासनिक अधिकारियों, स्वयंसेवकों एवं देश के विभिन्न महाविद्यालय के एन.एस.एस से जुड़े विद्यार्थियों का एक बहुत बड़ा समूह ग्राम विकास के इस सामूहिक अभियान से जुड़ा है ।

प्रश्न : सर्वप्रथम 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका की ओर से आपक हार्दिक स्वागत है । आप गाँधीवादी चिंतक, विचारक और प्रबुद्ध लेखक हैं । तीन माह पूर्व ही आप आयकर विभाग के प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त जैसे शीर्षस्थ एवं गरिमामयी पद से सेवानिवृत्त हुए हैं । कृपया यहाँ तक के अपने यात्रानुभव को हमारे पाठकों से साझा करें ।

उत्तर : साठ साल के लंबे और रोमांचकारी समय के बारे में संक्षिप्त में बताना लगभग असंभव है । संक्षेप में यही कह सकता हूँ कि यह समय तरह-तरह के अनुभव देने वाला रहा और मैंने इस सफर का खूब आनंद उठाया है और अब तक की यात्रा से काफी हद तक संतुष्ट भी हूँ । साठ साल की इस लम्बी यात्रा को मैंने आत्मकथात्मक संस्मरण के रुप में 'ऊबड़-खाबड़ सफर' नाम की किताब में बताने की कोशिश की है । इस यात्रा को मैंने तीन शीर्षकों में विभाजित किया है - संघर्ष, सफलता और सार्थकता । संघर्ष शीर्षक में उस समय की गाथा है जब गाँव में पले-बढ़े लड़के को आगे की पढ़ाई शहर आकर करते समय संकोच और एक अलग तरह की नगरीय संस्कृति से तारतम्य बिठाने में विविध संघर्ष करने पड़ते हैं । यह मेरी ही आप बीती नहीं है अपितु मेरे जैसे ग्रामीण पृष्ठभूमि के करोड़ों छात्र-छात्राओं की भी आप बीती है । यह मेरा सौभाग्य रहा कि मुझे एम.एससी. करने के बाद एक के बाद एक लगातार सफलता मिलती चली गई । पहले एम.फिल. की स्कॉलरशिप मिली, फिर पीएच. डी. की फेलोशिप, उसके बाद डिग्री कालेज की लेक्चररशिप और अंत में भारतीय वन सेवा और भारतीय राजस्व सेवा जैसी प्रतिष्ठित सेवाओं में सफलता । भारतीय राजस्व सेवा में आयकर विभाग में लगभग साढ़े तीन दशक लंबा समय भी कई अर्थ में रोमांचक अनुभव देने वाला रहा । मुझे उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और मध्य भारत के विभिन्न नगरों और महानगरों, यथा मुजफ्फर नगर, आगरा, दिल्ली, लखनऊ, मुंबई, हैदराबाद और भोपाल में कार्य करने का अनुभव मिला । इस दौरान लगभग पूरे देश मे भ्रमण हुआ जिससे भारतीय संस्कृति को अच्छी तरह देखने समझने के भरपूर अवसर मिले । इसी दौरान स्वामी कल्याण देव, बाबा आमटे, नानाजी देशमुख, अन्ना हजारे और नारायण देसाई आदि अनेकों समाजसेवियों का आत्मीय सानिध्य मिला और हिन्दी लेखन से निरंतर जुड़ाव रहने से हिन्दी साहित्य के

लगभग सभी प्रतिष्ठित लेखकों से आत्मीय संबंध बने । एक जीवन में इतना सब मिलना काफी संतुष्टि दायक रहा । इसी का प्रतिफल यह हुआ कि ग्रामीण क्षेत्रों में समाजसेवा के विभिन्न रचनात्मक कार्यों में मेरी रुचि निरंतर बढ़ती चली गई जिसने मुझे जीवन में सार्थकता का अहसास कराया । सेवानिवृति के बाद समाजसेवा के माध्यम से सार्थक जीवन का सफर अभी भी जारी है, बल्कि सच तो यह है कि इसने और तेज गति पकड़ ली है । मुझे पीछे छूटे और वंचित समाज को वह सब लौटाने में आनंद की अनुभूति होती है जो हमारे पास है ।

प्रश्न : किसी भी देश की प्रगति उस देश की शिक्षा नीति पर आधारित होती है । भारत की नई शिक्षा नीति के सम्बन्ध में आप क्या कहना चाहेंगे ?

उत्तर : हमारी शिक्षा नीति की आलोचना आजादी के पहले भी होती थी और गाँधी इसके सबसे बड़े आलोचक थे । गाँधी दो स्तर पर अंग्रेजों की शिक्षा नीति की प्रखर आलोचना करते थे । एक अंग्रेजी भाषा पर ज्यादा ध्यान देने के लिए और दूसरे इसके अक्षर और संख्या ज्ञान तक सीमित होने के लिए । गाँधी के लिए शिक्षा का बड़ा महत्त्व है और उनका मानना था कि वह स्त्री, पुरुष, बच्चों और वयस्कों सभी को मिलनी चाहिए और वह क्षेत्रीय भाषा, जो मातृभाषा भी होती है, उसी में होनी चाहिए और रोजगार परक होनी चाहिए न कि सिर्फ डिग्री प्राप्ति के लिए । दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद हमारी शिक्षा नीतियों में अंग्रेजी राज की शिक्षा नीति का ही वर्चस्व रहा है । नई शिक्षा नीति में इन दोषों को काफी हद तक दूर करने की कोशिश की गई है । हालांकि यह हमारे स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों के शिक्षकों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आदि पर निर्भर करेगा कि वे इस नीति पर कितना अमल सुनिश्चित कर पाते हैं । हमारे देश का संविधान विश्व के सर्वश्रेष्ठ संविधानों में गिना जाता है और हमारे यहाँ कानून भी अन्य देशों से ज्यादा ही हैं लेकिन हम सब जानते हैं कि हम नियम कानून के अनुपालन के मामले में बहुत कमजोर हैं । इस परिप्रेक्ष्य में नई शिक्षा नीति पर पूरे मन से अमल सुनिश्चित करने की जरूरत है तभी देशवासियों को इसका समुचित लाभ प्राप्त हो सकता है ।

प्रश्न : जिन उद्देश्यों एवं नीतियों को लेकर त्रिभाषा सूत्र को बनाया गया था, क्या राज्य उसका सही अनुपालन कर पाए? त्रिभाषा सूत्र को लेकर दक्षिण भारत के राज्यों की शिकायतों के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर : सैद्धांतिक तौर पर त्रिभाषा सूत्र अत्यंत आकर्षक हैं, लेकिन इसे व्यवहारिक स्तर पर लागू करने में काफी मेहनत की जरूरत है । एक तरफ स्कूल के विद्यार्थियों के लिए तीन भाषाओं को साधना आसान नहीं है और दूसरी तरफ भाषाओं को लेकर हमारे राजनेता और उनमें भी विशेष रूप से क्षेत्रीय दलों के नेता हल्की राजनीति करते हैं और भाषा के मुद्दे पर कट्टरता की संस्कृति को बढ़ावा देते हैं। तीसरा पक्ष भाषाई शुद्धता के पुजारियों का भी है जो भाषाओं के समन्वय और सहज लोक भाषा की बजाय तत्सम भाषा की वकालत करते हैं जो आम आदमी के लिए काफी दुष्कर लगता है । मेरा विचार है कि भाषा के मामले में हमें राजभाषा हिन्दी सहित सभी भारतीय और विदेशी भाषाओं के प्रति उदारता और सहिष्णुता का रास्ता अपनाना चाहिए जिससे देश की सभी भाषाओं के सहज सरल शब्दों का एक दूसरे में आवागमन हो । हमें अंग्रेजी की तरह हिन्दी का भी सर्व समावेशी रवैया अपनाना चाहिए ।

प्रश्न : कुछ हिन्दी सेवी संस्थाओं एवं हिन्दी प्रेमियों का मानना है कि आठवीं अनुसूची में सम्मिलित होने की होड़ में खड़ी हिन्दी पट्टी की भाषाएँ/बोलियां हिन्दी के प्रभुत्व क्षेत्र को संकुचित करने का एक षड्यंत्र है । भाषा को लेकर हो रही इस क्षेत्रवाद की राजनीति को आप कैसे देखते हैं ?

उत्तर : इस प्रश्न का आंशिक उत्तर ऊपर के प्रश्न में भी आ गया है। भाषा की राजनीति को सबसे ज्यादा हवा निश्चित रूप से क्षेत्रीय नेता देते हैं और नेताओं के बाद उनका साथ क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यिक भी देने लगते हैं । इन दोनों पक्षों के अपने-अपने स्वार्थ हैं । राष्ट्र प्रेमी नागरिक होने के नाते हमें भाषाओं और बोलियों को एक दूसरे से अलग-अलग करके देखने के बजाय एक दूसरे के नजदीक लाने के प्रयास करने चाहिए । हमें बोलियों और भाषा के फर्क को भी समझने की जरूरत है, क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक तो हो सकते हैं लेकिन एक दूसरे का विकल्प नहीं बन सकते।

प्रश्न : भारत में मातृभाषा शिक्षा के प्रावधान को लागू ना कर पाने के क्या कारण हैं ? एक बहुभाषी देश में मातृभाषा शिक्षा के लिए किन विकल्पों पर काम किया जाना चाहिए ?

उत्तर : जहाँ तक प्राइमरी शिक्षा का प्रश्न है वह मातृभाषा में दी जा सकती है, लेकिन उसके लिए भी हमें एक तरफ आम अभिभावकों को अंग्रेजी के मोहपाश से बाहर निकालना होगा क्योंकि बहुत लंबी गुलामी के बाद हमारे समाज में अंग्रेजी के प्रति जरूरत से ज्यादा आकर्षण बन गया है और यह आम धारणा बन गई है कि अंग्रेजी बोलने पढ़ने में सक्षम व्यक्ति ज्यादा ज्ञानी होते हैं और उनकी नौकरी और व्यापार आदि में सफलता की संभावना हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा वालों से बहुत ज्यादा है । दूसरी तरफ हमारे अंदर अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति वैसा लगाव नहीं है जो जर्मनी के नागरिकों में जर्मन और फ्रेंच भाषा के लिए फ्रांस के नागरिकों में दिखता है । जनता में यह मानसिकता रातों-रात पैदा नहीं हो सकती । इसके लिए हमें गाँधी जैसी विभूतियों के विचारों को जनता में प्रचारित-प्रसारित करना चाहिए जिससे लोग अपनी मातृभाषा के प्रति आत्मीय लगाव पैदा करने के लिए प्रेरित हों ।

प्रश्न : आप एक गाँधीवादी विचारक हैं । गाँधी जी के जीवन मूल्यों पर आधारित आपके कई लेख एवं पुस्तकें प्रकाशित हैं। गाँधी जी की भारतीय शिक्षा की परिकल्पना और वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में आप कितनी सामंजस्यता पाते हैं ?

उत्तर : गाँधी ने भारत में अंग्रेजों द्वारा लागू मैकाले की शिक्षा पद्धति की जगह जिस शिक्षा पद्धति की पुरजोर वकालत की थी उसे उन्होंने नई तालीम और बुनियादी शिक्षा कहा था । इस शिक्षा में जिन प्रमुख तत्वों पर ज्यादा जोर था उनमें मातृभाषा में शिक्षा और रोजगार परक शिक्षा सबसे प्रमुख तत्व थे । गाँधी चाहते थे कि हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें विद्यार्थियों को शिक्षा पूरी होने के बाद नौकरी के लिए नहीं भटकना पड़े और हमारी शिक्षा डिग्रीधारी बेरोजगारों की फौज नहीं बढ़ाए। गाँधी जी ने अपने वर्धा आश्रम (सेवाग्राम आश्रम) में इस तरह की शिक्षा देने वाले नई तालीम विद्यालय की शुरुआत भी की थी। उच्च शिक्षा के लिए उन्होने अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ शुरु करने में भी प्रमुख भूमिका निभाई थी । गाँधी अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से भी सहमत नहीं थे इसीलिए उन्होने अपने देश की जरूरतों के हिसाब से उच्च शिक्षण के लिए जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय शुरू करने में भी प्रमुख भूमिका निभाई थी । दुर्भाग्य से गाँधी के उत्तराधिकारियों ने गाँधी द्वारा प्रतिपादित भारतीय शिक्षा पद्धति की जगह अंग्रेजों द्वारा शुरु की गई पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को ही जारी रखा जो वर्तमान समय में भी जारी है।

प्रश्न : गाँधी जी का एक कथन है, "राष्ट्रभाषा के बिना देश गूंगा है।" इसको आप कैसे देखते हैं ? क्या भविष्य में भारत की अपनी कोई राष्ट्रभाषा होने की संभावना है ?

उत्तर: किसी भी राष्ट्र को एकता के सूत्र में जोड़े रखने के लिए एक राष्ट्रभाषा बहुत जरूरी है । गाँधी ने यह बात काफी पहले शिद्दत से पहचान ली थी कि कई खंड में बिखरे हुए तत्कालीन भारत में एकता की लहर पैदा करने के लिए एक राष्ट्रभाषा की बहुत जरूरत है । भाषा आपसी संवाद का सबसे सशक्त माध्यम है । यदि दो व्यक्ति एक दूसरे की भाषा नहीं समझते तो उनके बीच ठीक से वैचारिक संवाद संभव नहीं है । इसीलिए आजादी के आंदोलन की अग्रणी संस्था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए भी उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा अपनाने पर जोर दिया था और सभी सदस्यों को देश भर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रेरित किया था । मद्रास प्रांत में उन्होंने अपने बेटे देवदास को भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार का काम सौंपा था । जहाँ तक भविष्य में एक राष्ट्रभाषा होने का प्रश्न है वह तब तक मुश्किल दिखाई देता है जब तक हमारे देश के क्षेत्रीय नेता अपने निहित राजनैतिक स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्रभाषा के मुद्दे पर उदारता का परिचय नहीं देते । साथ ही मेरा यह भी मानना है कि हमें हिन्दी को भी सर्व समावेशी भाषा बनाना चाहिए जिससे सभी प्रांतों के भारतवासियों को उसमें अपनापन और आत्मीयता दिखाई दे ।

प्रश्न : वैश्विक धरातल में हिन्दी की उपस्थिति को आप कैसे देखते हैं ? हिन्दी को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने के लिए किन-किन क्षेत्रों में काम करने की आवश्यकता है ?

उत्तर : वैश्विक स्तर पर कोई भाषा तब तक स्थापित नहीं हो सकती जब तक वह ठीक से अपने देश में स्थापित नहीं होती क्योंकि दूसरे देशों में अपनी भाषा स्थापित करने के लिए हमें ही काफी प्रयास करने पड़ते हैं । जिन माध्यमों से कोई भाषा अपने देश की सीमा पार कर वैश्विक बनती है उनमें पहले शक्ति काम करती थी, जैसे हम पर विजय हासिल करने वाले मुस्लिम और इंग्लैंड के शासक अपनी भाषाएं क्रमशः उर्दू और अंग्रेजी भारत में लाए। वर्तमान परिस्थितियों में किसी देश को गुलाम बना कर अपनी भाषा थोपना असंभव है । वर्तमान दौर में यह काम एन.आर.आई. कर सकते हैं, बशर्ते कि वे विदेश में रहते हुए अपनी भाषा पर गर्व कर उसका प्रचार-प्रसार करें । व्यापार के लिए भी भाषाओं का आदान-प्रदान होता है । भारत से व्यापार के लिए बहुत से विदेशी लोग हिन्दी सीखते हैं । अच्छे साहित्य और फिल्म आदि भी ऐसे माध्यम हैं जो भाषा का वैश्विक प्रसार करते हैं । प्रेमचंद को पढ़ने के लिए दक्षिण भारत में काफी लोगों ने हिन्दी सीखी थी ।

प्रश्न : आप एक सम्मानित लेखक हैं । साहित्य की विविध विधाओं में आपने लेखन किया है । क्या आपको लगता है कि हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को पढ़ने वाले पाठकों की संख्या में वृद्धि हुई है ?

उत्तर: साहित्य को पढ़ने वाले पाठकों में विगत कुछ वर्षों में तो वृद्धि नहीं हुई । मुझे लगता है यह वैश्विक स्तर पर हर भाषा के साथ हुआ है । इसका मूल कारण इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल युग के वर्चस्व लगते हैं जहाँ पढ़ने की जगह देखने, सुनने ने ले ली है । इंटरनेट के माध्यम से ई-बुक प्राप्त करना और पढ़ना काफी आसान हो गया है, लेकिन इसके बावजूद पाठक कम हुए हैं, क्योंकि दृश्य माध्यम ने पढ़ने की आदत काफी कम कर दी है । आजकल युवा

शेष पृष्ठ संख्या 16 पर

"हिन्दी का काम देश का काम है, समूचे राष्ट्र निर्माण का प्रश्न है।"

-बाबूराम सक्सेना

साक्षात्कार : श्री प्रेमपाल शर्मा, शिक्षाविद्, लेखक, साहित्यकार, पूर्व संयुक्त सचिव, रेल मंत्रालय, भारत सरकार

केवल अंग्रेजी ही मेधावी होने का प्रमाण नहीं है भारतीय भाषाओं के नौजवान भी उतने ही मेधावी होते हैं

प्रेमपाल शर्मा

15 अक्टूबर, 1956 को उत्तर प्रदेश के बुलन्द शहर स्थित दीघी गाँव में जन्में प्रेमपाल शर्मा जी एक विख्यात साहित्यकार, लेखक, शिक्षाविद एवं पूर्व प्रशासक हैं । साहित्य की विविध विधाओं में आपकी मजबूत पकड़ है । सामाजिक सरोकारों में निरंतर आपकी सक्रियता रहती है साथ ही भाषा, शिक्षा और संस्कृति जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर आप नियमित लेखन करते रहते हैं । आप हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं के उन्नयन के प्रबल पक्षधर हैं । विभिन्न माध्यमों से आप लगातार इस बात की वकालत करते हैं कि बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उसकी मातृभाषा में दी जाए तथा माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में भी पढ़ाई का माध्यम भारतीय भाषाएँ हों । जनसत्ता, हंस, युवा संवाद, पुस्तक वार्ता, कथादेश आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में तथा विभिन्न समाचार पत्रों में आपके लेख, कहानियां एवं कविताएँ आदि प्रकाशित हो चुकी हैं । आपने विज्ञान विषय से स्नातक एवं हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर तक की शिक्षा प्राप्त की हैं । आप एक कुशल अनुवादक एवं प्रखर वक्ता भी हैं । कई टी.वी. चैनलों एवं सरकारी आयोजनों में आपको विशेष वक्ता के रूप में आमंत्रित किया जाता है । विविध विषयों में आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं । 'भाषा, शिक्षा और समाज', 'हिन्दी क्षेत्र : जड़ता की जड़ें', 'शिक्षा के सरोकार', 'शिक्षा, भाषा और प्रशासन', 'भाषा का भविष्य', 'हिन्दी पट्टी : पतन की पड़ताल' और 'पढ़ने का आनन्द' आदि आपकी चर्चित पुस्तकें हैं, जो भारतीय शिक्षा व्यवस्था और भाषा नीति की विस्तृत विवेचना करती है । 1977 में दिल्ली प्रशासन में पहली नौकरी शुरू करने वाले श्री प्रेमपाल शर्मा जी 1979 में लोक सेवा में चयनित अधिकारी हैं । आपको प्रतिष्ठित इफको सम्मान, हिन्दी अकादमी का सम्मान, इंदिरा गाँधी राजभाषा पुरस्कार आदि सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है । आप रेल मंत्रालय, भारत सरकार के संयुक्त सचिव जैसे गरिमामयी और अति महत्त्वपूर्ण पद से सेवानिवृत्त हुए हैं । वर्तमान में आप साहित्यिक गतिविधियों एवं सामाजिक एवं शैक्षिक विषयों से सम्बंधित लेखन में सक्रियता से जुड़े हुए हैं ।

प्रश्न : सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी भाषा भारती पत्रिका की ओर से आपका हार्दिक स्वागत है । आप एक सम्मानित लेखक, कुशल अनुवादक, साहित्यकार, शिक्षाविद एवं विद्वान वक्ता हैं । आप भारत सरकार की सेवा से एक महत्त्वपूर्ण पद से सेवानिवृत्त हुए हैं । यहाँ तक की अपनी यात्रा के बारे में हमारे पाठकों को कुछ बताएं ।

उत्तर : दोस्त, धन्यवाद आपको इतने विशेषणों को एक साथ लगाने के लिए किन्तु सच्चाई यह है कि मुझे अपने बचपन में ऐसा कुछ भी बनने की उम्मीद नहीं थी । खेतों में काम करते एक किसान बालक का जीवन ज्यादातर खेतों और पशुओं के साथ बीतता था । मैं आभारी हूँ उन पुस्तकों का जो मुझे अपने बचपन में लगातार पढ़ने को मिली । मन्मथ नाथ गुप्त की भारत के क्रन्तिकारी (प्रकाशक हिन्द पॉकेट बुक्स), प्रेमचंद की कहानियाँ, हिन्दी के और दूसरे लेखक जो मुझे अपनी बीएससी करते हुए खुर्जा की लाइब्रेरी में विज्ञान की किताबों को ढूंढते हुए मिले । और वहीं मुझे मिली उन दिनों की मशहूर पत्रिकाएँ धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका और सबसे ऊपर दिनमान । अखबार भी कॉलेज के दिनों में खुर्जा लाइब्रेरी में ही पढ़ने को मिले । बस किताबों की दुनिया ने हर बार कदम-दर-कदम ताकत दी, सपने बनाए और थोड़ा बहुत नौकरी और थोड़ी बहुत साहित्यिक यात्रा जारी रही । मुझे लगता है कि सचमुच किताब दुनिया का सबसे बड़ा आविष्कार है और इसी अर्थ में सही शिक्षा जो आपको तर्कशील और माननीय बनाए । शेष तो जीवन में सभी को कुछ न कुछ करना होता है । मुझे भी सरकारी नौकरी उसी यात्रा में नसीब हुई ।

प्रश्न : आप एक जाने-माने शिक्षाविद हैं । भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं भाषा नीति जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर आप नियमित लेखन करते रहते हैं । भारत की नई शिक्षा नीति में भाषा एवं शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : मैं न किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहा और ना अपने को शिक्षाविद मानता हूँ । मेरी शिक्षा की समझ गाँव की पगडंडियों से चलती हुई दिल्ली जैसे शहर तक पहुँची है । शुरू में नौकरी के लिए तरह-तरह की किताबें पढ़ी । विज्ञान का स्नातक जरूर रहा लेकिन साहित्य और दूसरी किताबों में मन ज्यादा रहा । उसका कारण यह भी रहा कि अपनी भाषा में साहित्य की ये सब किताबें ज्यादा सहज उपलब्ध थी, जबकि विज्ञान की किताबें ज्यादातर अंग्रेजी में । आप किताबों से कब जुड़ते हैं ? जब वह आपकी बोली, भाषा में उपलब्ध होती है । उसके चरित्र आपके आसपास होते हैं । वही समस्याएँ उठाई जाती हैं जो आप रोजाना देखते हैं । नौवीं-दसवीं में पढ़ते-पढ़ते मुझे प्रेमचंद की सैकड़ों कहानियाँ इतनी अच्छी लगती थी कि उसी क्रम में 12 वीं कक्षा में मैंने वैसी ही अछूत समस्या, गाँव देहात में भूत-प्रेतों, अन्धविश्वास, आडम्बर की थीम पर कुछ

कच्ची-पक्की कहानियाँ लिख डाली । मेरी प्रतिभा से ज्यादा प्रेमचंद की प्रतिभा और कलम का कमाल था जिसने मुझे गंभीरता से साहित्य की तरफ और अपनी भाषा की तरफ मोड़ा । नई शिक्षा नीति में जब प्राथमिक शिक्षा प्रांतीय भाषाओं, भारतीय भाषाओं में अनिवार्य करने की बात कही गई है तो यह बहुत अच्छा कदम है । नई शिक्षा नीति 2020 में आठवीं तक भी अपनी भाषा में शिक्षा की बात कही गई है क्योंकि उसी समय उनको व्यवसायिक पाठ्यक्रम भी पढ़ाया जायेगा और आप समझ सकते हैं कि व्यवसायिक पाठ्यक्रम मिस्त्री का काम, बढ़ई का काम, सिलाई का काम, कंप्यूटर ठीक करने का काम, बागवानी यह सब हमें क्या अंग्रेज सिखाएंगे ? हमारे वे शिक्षक भारतीय भाषाएँ तो जानते हैं । आने वाले दिनों में बारहवीं तक के विद्यालयी पाठ्यक्रम को भारतीय भाषाओं में पढ़ाने की आवश्यकता है । इसमें समय जरूर लगेगा क्योंकि 70 साल में हम अपनी भाषाओं में पढ़ाने के मामले में बहुत पिछड़ गए हैं। अगर बुनियाद अपनी भाषाओं में की गई तो कॉलेज लेवल, इंजीनियरिंग की पढ़ाई, डाक्टरी की पढ़ाई भी अब भारतीय भाषाओं में संभव बनेगी । 2021 के सत्र में इंजीनियरिंग भारतीय भाषाओं में शुरू हो चुकी है । हालांकि अभी देश के 14 कॉलेज हिन्दी, तमिल, तेलुगु, मराठी और बांग्ला में ही पढ़ाने के लिए सामने आए हैं । भारत सरकार ने भी पूरी सामग्री स्वयं और दूसरे मंचों पर उपलब्ध करा दी है ।

प्रश्न : विश्व के सभी देशों में प्राथमिक शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण चरण के रूप में बच्चों के मौलिक चिंतन के विकास के लिए मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा पर जोर दिया जाता है, किन्तु भारत में प्राथमिक स्तर से ही बच्चों में अंग्रेजी भाषा का बीजारोपण किया जाता है । इस संदर्भ में आप क्या कहना चाहेंगे ?

उत्तर : आपने जो प्रश्न उठाया है यह प्रश्न गाँधी जी के समय से ही उठाया जाता रहा है । इस देश के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने आजादी की संघर्ष यात्रा के शुरू में ही भारतीय भाषाओं और विशेषकर हिन्दुस्तानी भाषा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया था । दक्षिण अफ्रीका से लौटते ही 1916 में उन्होंने कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को देश की भाषा में काम करने और जनता से जुड़ने का आह्वान किया था । 1916 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के मंच से उनका दिया भाषण आज भी आपकी चेतना को झकझोर सकता है । उन्होंने वहाँ उपस्थित राजा रजवाड़े, जमींदारों की शान-शौकत को तो ललकारा ही, उन्होंने साफ कहा कि जिस अंग्रेजी भाषा में यहाँ बात हो रही है उसे कौन समझता है ? यदि आजादी चाहिए, देश की शिक्षा को बदलना है तो हमें अपनी भाषा में बात करनी होगी । उनकी बातों से सभागृह तालियों से गूंज उठा था । 1941 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रजत जयंती वर्ष में बोलते हुए उन्होंने इस विश्वविद्यालय के संस्थापक मदन मोहन मालवीय को फिर से याद दिलाया, "क्या आपके विश्वविद्यालय का सपना अंग्रेजी को बढ़ाना था ?" वहाँ उपस्थित तेलुगु भाषी विद्यार्थियों से कहा कि आप विश्वविद्यालय के अधिकारीयों से अपनी भाषा में पढ़ने की माँग कीजिए । गाँधी जी ने ऐसा क्यों कहा, क्योंकि दुनियाभर के शिक्षाविद राष्ट्र अपनी भाषा में ही पढ़ाते हैं । उन दिनों भी पढ़ाते थे और आज भी । यह देश का दुर्भाग्य है कि आजादी के तुरंत बाद सत्ता पर ऐसे अंग्रेजीदा लोग काबिल होते गए जिन्होंने भारतीय लोकतंत्र को अंग्रेजी का पर्याय बना दिया । यदि सत्ता चाहिए, ऊँची नौकरियां चाहिए, राजदूत बनना है, तो बिना अंग्रेजी के संभव नहीं है। इसी का अंजाम था कि 70 के दशक के आते-आते अंग्रेजी का साम्राज्य पूरी जड़ें पकड़ चुका था । दोष तमिलनाडु का इतना नहीं है जितना हिन्दी भाषी राज्यों का है । यह अमीर पैसे वाले अपने बच्चे को तो अंग्रेजी स्कूल में भेज रहे थे, विदेशों में पढ़ा रहे थे और दक्षिण पर हिन्दी थोपने की वकालत करते थे । इसका विरोध होना ही था । भारतीय भाषाओं को बचाने के मामले में दक्षिण भारत ने उत्तर भारत के मुकाबले ज्यादा बेहतर काम किया है और इसलिए दक्षिण की शिक्षा व्यवस्था वैसी बर्बाद नहीं हुई जैसी गंगा घाटी उर्फ उत्तर भारत की । शिक्षा को बदलाव का आधार बनाना है तो वह मातृभाषाओं के माध्यम से ही संभव है ।

प्रश्न : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में समान शिक्षा की अवधारणा को लागू किया गया था किन्तु 90 के दशक में आते-आते यह यह व्यवस्था डगमगा गई और पिछले 20 वर्षों का आकलन करें तो शिक्षा में असमानता की खाई लगातार बढ़ती जा रही है । इस विषय में आपकी क्या राय है ?

उत्तर : समान शिक्षा की बात डॉक्टर दौलत सिंह कोठारी आयोग ने 1966 में अपनी रिपोर्ट में उठाई थी । संभवत यह अब तक की शिक्षा पर सबसे मुकम्मल रिपोर्ट है । इसके सदस्य भी जाने-माने देसी विदेशी विद्वान थे और स्वयं डॉ. कोठारी एक वैज्ञानिक भी थे, प्रशासक भी थे और यूजीसी के 10 साल चेयरमैन रहे । दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर भी रहे । ऐसे व्यक्ति ने बार-बार कहा कि यदि देश में असमानता को मिटाना है तो समान शिक्षा और कॉमन स्कूल सिस्टम तुरंत लागू किया जाना चाहिए और दूसरी बड़ी बात भी कही कि न केवल स्कूली शिक्षा बल्कि उच्च शिक्षा भी अपनी भाषा में दिए जाने की जरुरत है ।

"समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी लिपि ही हो सकती है ।"

-(जस्टिस) कृष्ण स्वामी अय्यर

संसद सर्वसम्मति से इस पर विचार किया और माना भी । किन्तु जमीन पर यह विचार नहीं उतरा । बस छोटे-मोटे कुछ कदम उठाए गए । इस रिपोर्ट में त्रिभाषा सूत्र भी सुझाया गया था । उत्तर के राज्य कम से कम एक दक्षिण भारतीय भाषाओं को जरूर सीखेंगे और दक्षिण के राज्य हिन्दी । अंग्रेजी सीखने की दोनों को छूट थी । उत्तर भारत ने धोखा दिया । दक्षिण की भाषा सीखने के बजाय उन्होंने सिर्फ संस्कृत को पढाना जारी रखा । इससे त्रिभाषा सूत्र पूरी तरह फेल हुआ। इसी का बुरा परिणाम 80 के दशक में यह हुआ कि अंग्रेजी का रथ भारतीय भाषाओं को और विशेषकर हिन्दी को कुचलते हुए बहुत तेजी से आगे बढ़ा । उदारीकरण के बाद अंग्रेजी ने केवल भारतीय भाषाओं को ही तबाह नहीं किया, सरकारी विद्यालयों को भी धीरे-धीरे खत्म करना शुरू कर दिया क्योंकि निजी विद्यालयों का धंधा अंग्रेजी से ही चलता है और अंग्रेजी सत्ता, प्रशासन, न्यायपालिका से लेकर विश्वविद्यालयों की पहली पसंद बन गई थी । नतीजा सामने है- पूरा देश अमीर अंग्रेजी और 99% गरीब भारतीय भाषाओं में बंट चुका है ।

प्रश्न : हिन्दी पट्टी के बौद्धिक समाज का रुख अंग्रेजी उन्मुख होने के मुख्य कारण क्या हैं ? शिक्षा, साहित्य, रोजगार और तकनीक के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं की स्थिति को आप कैसे देखते हैं ?

उत्तर : हिन्दी पट्टी के पतन में अपनी भाषा में नहीं पढ़ाने का भी बहुत बड़ा योगदान है । मैं तो कहूंगा यह भाषा के पतन के समानांतर है । अपनी भाषा में जब पढ़ेंगे नहीं, विचार नहीं करेंगे तो समाज को कैसे समझेंगे ? यानी पढ़ेंगे अंग्रेजी में और अंग्रेजी ही उस जनता पर लादेंगे तो बौद्धिक दिवालियापन होगा ही ! याद कीजिए हमारे सबसे अच्छे साहित्यकार और बौद्धिक चिंतन जितना आजादी से पहले हुआ है आजादी के बाद वह लगातार गिरता गया है । महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, सुदर्शन, निराला, अज्ञेय, दिनकर ... एक बहुत बड़ी विरासत है जिसके बूते पर आज भी हिन्दी साहित्य और उसकी बौद्धिकता कायम है । इसका सीधा दोष कांग्रेसी सत्ता का है जिसका प्रधानमंत्री देश की भाषा को मुश्किल से समझता था । उतनी भर जितनी राजनीति के लिए जरूरत थी और इसलिए उनके आसपास सभी अमीर अंग्रेज वाले थे जिन्हें हिन्दुस्तानी हिन्दी भाषा फूटी आँख नहीं सुहाती थी । और यहीं खेल शुरू होता है सत्ता की तरफ बढ़ने का । हिन्दी पट्टी सदा से सत्ता की भूखी रही है । विभाजन पर नजर डालें तो देश के विभाजन के लिए गंगा घाटी के अमीर मुसलमान ज्यादा जिम्मेदार रहे हैं । वे तो भागकर पाकिस्तान चले गए । जो अमीर, दूसरे समुदायों के यहाँ रह गए उन्हें दिल्ली पर कब्जा करना था । राजेन्द्र प्रसाद जी को राष्ट्रपति बनना है, जवाहरलाल नेहरु को प्रधानमंत्री दिल्ली की संसद पर पूरा कब्जा । महात्मा गाँधी के भाषा के आदर्श, शिक्षा के आदर्श, ग्रामोत्थान के आदर्श सब कूड़ेदान में चले गए । शिक्षा और भाषा का पतन होगा तो समाज का पतन होना निश्चित है और हिन्दी क्षेत्र शिक्षा की इसी बुनियादी समझ ना होने के कारण आज दुनिया का सबसे गरीब क्षेत्र बना हुआ है । ऐसे क्षेत्र में राजनीति धर्म और जाति की तो रहती है किन्तु ज्ञान-विज्ञान, तकनीक की संभावना दूर तक नजर नहीं आती ।

प्रश्न : भारत में अनुवाद केवल साहित्यिक एवं राजनयिकों आदि के लिए द्विभाषिक सेवा तक सीमित है । आप स्वयं एक कुशल अनुवादक हैं । अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान, विज्ञान, तकनीक आदि का भारतीय भाषाओं में अनुवाद न होने के क्या कारण हैं ?

उत्तर : मैं फिर कहूंगा अनुवाद जरूरत से पैदा होता है । अंग्रेजी ज्ञान को चीन, जापान और दूसरे देशों की तरह तुरंत अपनी भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध कराने की बजाय हमने अंग्रेजी भाषा को ही पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बना दिया । चार दशकों तक देश के ज्यादातर हिस्सों में अंग्रेजी विषय की पढ़ाई छठी क्लास से शुरू होती थी । याद कीजिए, विषय के रूप में माध्यम की बात तो 12 वीं के बाद आती थी । आप हर अगले दशक में अंग्रेजी को पहली कक्षा तक पहुँचाने में लगे हुए है । 90 के बाद शुरू में अंग्रेजी विषय को देश के कई राज्यों ने पहली कक्षा से पढ़ाना शुरू किया । छठी से वही स्कूल ज्यादा धंधे में सफल हुए जिन्होंने अंग्रेजी माध्यम लागू कर दिया था । यहाँ भी होड़ हुई कि हम पहली कक्षा से अंग्रेजी माध्यम लायेंगे । जनता मूर्ख नहीं है । वह देखते हैं कि किन बच्चों को नौकरी अंग्रेजी की वजह से मिल रही है । जब मालिक के बच्चे अंग्रेजी स्कूल में जायेंगे तो काम वाली या ड्राइवर अपने बच्चों को वहाँ क्यों नहीं भेजेगा? चाहे उसे अपनी पेट की रोटी काटनी पड़े । सबसे बुरी स्थिति में तो समाज का यह गरीब वर्ग है जिसके बच्चों को ना अच्छी अंग्रेजी पढ़ाने वाले मिल रहे हैं ना अच्छी ट्यूशन पढ़ाने वाले मिल रहे हैं । यहाँ तक कि बच्चे अवसाद में आ जाते हैं । आत्महत्या तक होती हैं क्योंकि जो फीस वे दे रहे हैं उसके बदले में उनका ज्ञान पिछड़ रहा है। और इसी दिल्ली में बैठे बुद्धिजीवी, पत्रकार, लेखक, राजनेता इस ओर आँखें मूंदे रहता है । वह रात-दिन पुरस्कार, किसी समिति, किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर, वाइस चांसलर बनने की जुगाड़ में लगा रहता है । जब जुगाड़ इतना हावी हो, अनुवाद और इन सारी बातों की चिंता कौन करे ? यहाँ तक कि दिल्ली में आई नई आप सरकार ने भी अपनी भाषा में पढ़ने-पढ़ाने के प्रश्न को अभी तक छुआ नहीं है । इसका कारण साफ है कि उनके सलाहकार भी उसी अंग्रेजी अमीर वर्ग के एनजीओ संस्कृति के हैं और और उन सबकी माँ अंग्रेजी है । इस सरकार को जगाने के लिए भी तो कोई चाहिए किन्तु इस मुद्दे पर पूरी चुप्पी है । दिल्ली में बैठे ज्यादातर साहित्यकार पुरस्कार, सलाहकार, वाइस चांसलर, प्रोफेसर बनने की तिकड़मों में रात-दिन शामिल है । वह खुद अपनी अंग्रेजी को रात-दिन ठीक करने में लगा है तो वह अपनी भाषा और अनुवाद के बारे में क्यों सोचेगा ?

प्रश्न : त्रिभाषा सूत्र के लिए जो उद्देश्य निर्धारित किए गए थे, क्या सभी राज्यों ने उसका न्यायोचित अनुपालन किया है ? क्या त्रिभाषा सूत्र को लागू करने में कहीं कोई चूक हुई है ?

उत्तर : त्रिभाषा सूत्र की बात मैं कह चुका हूँ फिर भी ज्यादा बड़ी चूक उत्तर भारतीय राज्यों की है । नई भाषा नीति में एक उम्मीद की किरण है और वह है कि आपको तीन भाषाओं में दो भारतीय भाषाएं चुननी होंगी । इससे रास्ता खुलेगा आप दक्षिण में है तो अंग्रेजी के साथ तमिल, मलयालम, मराठी और हिन्दी भी साथ होगी । उत्तर में है तो हिन्दी के साथ कोई दूसरी भाषा, बस भारतीय भाषा के नाम पर संस्कृत की आड़ उत्तर भारत न ले । रोजाना के जीवन में संस्कृत नहीं बोली जाती । वह एक महान भाषा है लैटिन की तरह और उसे विश्वविद्यालयों, अकादमिक संस्थानों तक सुरक्षित रखा जाए जैसे यूरोप में लैटिन को रखा गया है । विद्यालयी पाठ्यक्रम में उत्तर भारत दक्षिण भारत की भाषाओं की कीमत पर संस्कृत न लादे । अगर ऐसा हुआ तो दक्षिण भारत और बड़ी ताकत से हिन्दी का विरोध करेगा और यह हमारी भारतीयता को बड़ा नुकसान करेगा । दक्षिण भारत मौजूदा भारत में ज्यादा बड़ा योगदान कर रहा है चाहे मामला प्रशासनिक व्यवस्था का हो, रोजगार का हो, सुख-शांति का हो या सामाजिक सद्भाव का ।

प्रश्न : आठवीं अनुसूची में सम्मिलित होने के बावजूद भी कश्मीरी एवं संथाली जैसी भाषाएँ संकटग्रस्त भाषाओं की श्रेणी में हैं । क्या भाषाओं के संरक्षण के दृष्टिकोण से आठवीं अनुसूची एक सशक्त माध्यम है ?

उत्तर : हमारे संविधान निर्माताओं ने आठवीं अनुसूची में 14 भाषाएँ शामिल की थी । परिवर्तन लोकतंत्र का लक्षण है । आगे चलकर इसमें 4 भाषाएँ और जोड़ दी गई किन्तु गलती कब हुई जब बिहार से मैथिली भाषा की माँग तेज हुई और चुनावी गणित के दबाव में मैथिली भी आठवीं अनुसूची में शामिल हुई । इसके साथ शामिल हुई दूसरी अन्य भाषाएँ - बोड़ो, कोंकणी, डोगरी उनको शामिल करना तो उचित लगता है किन्तु मैथिली को नहीं । क्योंकि मैथिली के बाद अब भोजपुरी, मगही, राजस्थानी, ब्रज, बुन्देलखंडी आदि भी ऐसी माँग कर रहे हैं । मैथिली, भोजपुरी, अवधी यह सब हिन्दी का हिस्सा है, इसे कोई हिन्दी से अलग नहीं मानता । इनके साहित्यकार हिन्दी साहित्यकारों के साथ हैं; आजादी के वक्त भी थे । ऐसी माँग करना जिन्ना की माँगों की तरह है । हम अपनी बोलियों को आगे बढ़ाएं । किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर तो हिन्दी उनका 90 % साथ देती है । मैं प्रश्न पूंछू कि 20 वर्षों में मैथिली ने क्या हासिल किया है ? पुस्तक मेले में उनका कोई स्टाल नहीं होता । क्या दिल्ली में पढ़ने वाले बिहारियों ने कभी मैथिली भाषा माध्यम से पढ़ने की माँग की है ? क्या भोजपुरी में पढ़ने की माँग की है ? उनकी माँग होगी तो भोजपुरी अकादमी, मैथिली अकादमी की होगी जिससे सरकारी अनुदान पा सके । अध्यक्ष, उपाध्यक्ष बनकर गाड़ियों में घूम सके और संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा में मैथिली, भोजपुरी,उर्दू आदि वैकल्पिक विषय लेकर कुछ सरकारी नौकरी पा सके । इतने छोटे स्वार्थ के लिए यह राष्ट्र की अस्मिता के विरुद्ध बारूद बिछा रहे हैं इससे बचने की जरुरत है । हम हिन्दी की सभी बोलियों, आंचलिक भाषाओं का सम्मान करते हैं और उनको विद्यालयी स्तर पर पढाया जाना भी चाहिए ।

प्रश्न : देश में छात्रों की आत्महत्याओं की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं । जिस तरह से मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेज के छात्र होनहार और प्रतिभाशाली होने के बावजूद भी परीक्षा में भाषा के दबाव के कारण आत्महत्याएँ कर रहे हैं, इन घटनाओं को आप कैसे देखते हैं ?

उत्तर : मैं पिछले 20 वर्षों से ऐसी घटनाओं को बहुत नजदीक से देख रहा हूँ । आत्महत्या तो इनका अंतिम उपाय है उससे पहले यह स्कूल छोड़ देते हैं । अंग्रेजी के डर से स्कूल जाना बंद कर देते हैं । माँ-बाप ट्यूशन पर भी अंग्रेजी पढ़ाने के लिए सबस ज्यादा खर्च करते हैं लेकिन जब समाज, परिवार की भाषा भारतीय हो तो अंग्रेजी कहाँ से आएगी ? नतीजा कभी एम्स का मीणा आत्महत्या से पहले पत्र छोड़ता है कि, "मुझे अंग्रेजी नहीं आती । न प्रोफेसर सहयोग करते हैं न सहपाठी ।" एक मेधावी छात्र के असहायक का यह देश अनुमान नहीं लगा रहा । हर वर्ष लगभग 50 आत्महत्याएं होती हैं और अमीरजादे जितना शोर जाति-जाति धर्म-धर्म पर करते हैं उतना भाषा के मसले पर नहीं । शिक्षा आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए होती है उसे खत्म करने के लिए नहीं । अंग्रेजी और अंग्रेजी माध्यम हमारी युवा पीढ़ी के आत्मविश्वास का गला घोट रहा है । मौजूदा वक्त की राष्ट्रभक्ति यही है कि आप सभी भारतीय भाषाओं को समान रूप से आगे बढ़ाएं और यथासंभव अंग्रेजी को हाशिए पर रखें । भाषा के रूप में अंग्रेजी को पढ़ना गलत नहीं है । गलत है उसे शिक्षा के चप्पे-चप्पे पर दबाव से पढ़ाना ।

प्रश्न : आप स्वयं लोक सेवा आयोग से चयनित अधिकारी हैं । संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा में हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़कर आने वाले छात्रों की संख्या प्रत्येक वर्ष कम होती जा रही है । इसके पीछे आप किन कारकों को देखते हैं ?

उत्तर : नौकरियों का प्रश्न भाषा के मसले में सबसे महत्त्वपूर्ण है । जब अंग्रेजी पढ़ने वालों को ही सरकारी नौकरी मिलेगी यहाँ तक कि आवासीय घरों में क्योंकि गेट पर भी अंग्रेजी जानना जरूरी हो, चपरासी के लिए भी अंग्रेजी जानना जरूरी हो तो हिन्दी कोई क्यों पढ़ेगा ? इस देश के प्रशासन और भाषा के लिए वर्ष 1979 में दौलत सिंह कोठारी समिति ने जो सिफारिश की और उस समय के मोरारजी देसाई सरकार ने उसे लागू किया उसके समानांतर मुझे केवल सूचना का अधिकार क्रांतिकारी लगता है । किन्तु जहाँ जाति और धर्म के मशीहाओं का साल में कई बार नाम लिया जाता है, क्या कभी किसी को दौलत सिंह कोठारी का नाम लेते हुए सुना है ? उन्होंने भारत की उच्चतम प्रशासनिक सेवाओं में अपनी भाषाओं में उत्तर लिखने की सिफारिश की । उन्होंने कहा, "केवल अंग्रेजी ही मेधावी होने का प्रमाण नहीं है भारतीय भाषाओं के नौजवान भी उतने ही मेधावी होते हैं ।"

पृष्ठ संख्या 11 का शेष

यदि उन्हें उच्च सेवाओं में जाने का अवसर नहीं मिला तो वे कहाँ जायेंगे ? उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के आंकड़ें प्रस्तुत किए जहाँ लगभग 20 से 30 प्रतिशत बच्चे 70 के दशक में इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र हिन्दी भाषा में पढ़ते थे। अफसोस आज स्नातकोत्तर में दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी माध्यम शायद ही बचा हो । जेएनयू में तो हिन्दी माध्यम प्रवेश ही नहीं कर पाया । वहाँ बड़ी-बड़ी जाति और दूसरी क्रांतियाँ रोज होती हैं किन्तु इस विषय पर सभी ने चुप्पी साध रखी है । जनता की भाषा में जनवाद नहीं है, उनकी जाति में उन्हें दिखता है । धर्म में दिखता है। दिल्ली की नकल पूरा देश करता है । 1979 में भारतीय भाषाओं में परीक्षा की छूट देने की बहुत सुखद परिणाम निकले हैं । लगभग 15 से 20% गरीब मेधावी छात्र सन 2000 तक हर वर्ष चुने जाते रहे। उसके बाद का दौर गिरावट का रहा। 2011 में तत्कालीन सरकार के प्रारंभिक परीक्षा में अंग्रेजी लादने से कोठारी आयोग की सिफारिशों पर वज्रपात हो गया । आज स्थिति यह है कि मुश्किल से 3% हिन्दी समेत सभी भारतीय भाषाओं के बच्चे सफल हो पाते हैं । जिस देश में 1% मुश्किल से अंग्रेजी समझने वाले हैं वे संघ लोक सेवा आयोग की 97% पदों पर कब्जा जमाते हैं । ऐसा ही स्टाफ सिलेक्शन कमीशन में है और एनडीए और दूसरी परीक्षाओं में भी है । नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी की प्रवेश परीक्षा भी अंग्रेजी में है और भारतीय प्रबंधन संस्थानों की भी । इस सरकार की प्रशंसा की जानी चाहिए कि मेडिकल प्रवेश परीक्षा नीट 13 भाषाओं में शुरू की गई है । आईआईटी प्रवेश परीक्षा भी भारतीय भाषाओं में करने की तैयारी है । अच्छा हो देश के बुद्धिजीवी साहित्यकार सत्ता की राजनीति छोड़कर भारतीय भाषाओं को आगे बढ़ाने के मुद्दे पर एक साथ समर्थन दें वरना भारतीय भाषाएँ तो डूबेंगी ही भारतीय साहित्यकारों का भविष्य भी डूब जाएगा ।

प्रश्न : आपने हमें अपना बहुमूल्य समय दिया, इसके लिए हम आपका आभार व्यक्त करते हैं । अंत में युवा पीढ़ी एवं पाठकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे ?

उत्तर : सुधाकर पाठक जी, मैं कोई बाबा या राजनेता नहीं जो अपने को युवा पीढ़ी को संदेश देने लायक समझूँ । मैं फिर से इस बात को कहना चाहता हूँ युवा पीढ़ी से कि जिस सहज भाषा में आप अपने घर पर बोलते हैं उसी सहज भाषा में पढ़ने-पढ़ाने का आग्रह अपने अभिभावकों से, अपने विद्यालय, विश्वविद्यालय से कीजिए । उसके लिए आन्दोलन चलाइए । गाँधी जी ने सच के साथ रहने के बहुत सारे रास्ते हमें बताए हैं । अपनी भाषा में पढ़ेंगे तो अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाएँ सीखना और भी आसान होता है । अपनी भाषाएँ कम आती है तो समझ भी कम होती है, इसी कारण आप दुनिया को हर क्षेत्र में पिछड़ जाते हैं और इसकी शुरुआत सबसे पहले दिल्ली, इलाहबाद, जयपुर, पटना, भागलपुर, भोपाल जैसे शहरों में रहने वाले नौजवान करे क्योंकि उन्हीं की होड़ में अंग्रेजी आगे बढ़ती है । युवा पीढ़ी को यह मैं पूरे जोर से कहना चाहता हूँ ।

पीढ़ी अपना अधिकांश समय नेट सिर्फ, फ्री में उपलब्ध व्हाट्स ऐप चैटिंग और फोन आदि में बर्बाद करती है । इसीलिए काफी ज्यादा किताबें सहज उपलब्ध होने के बावजूद आजकल काफी कम साहित्य पढ़ा जा रहा है ।

प्रश्न : आप भारतीय वन सेवा एवं भारतीय राजस्व सेवा के शीर्षस्थ पदों पर रह चुके हैं । लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में हिन्दी भाषी छात्रों की उपस्थिति प्रत्येक वर्ष कम होती जा रही है । इस विषय में आपका क्या मंतव्य हैं ?

उत्तर : मेरे पास इस तरह के आंकड़े नहीं हैं जिनसे यह स्पष्ट हो सके कि हिन्दी भाषी छात्रों की संख्या लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में कितनी और किस दर से कम हुई है । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दी माध्यम के सरकारी स्कूलों में पढ़ाई का स्तर गिर गया हो जिससे वहाँ से कम विद्यार्थी सफल हो रहे हैं ! एक सच यह भी है कि अंग्रेजी के गर्व और मोह के कारण ज्यादातर छात्र हिन्दी माध्यम से दूर रहते हैं । बहुत से विद्यार्थी हिन्दी माध्यम से परीक्षा पास करने के बाद खुद भी अंग्रेजी बोलने लगते हैं और अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाते हैं, यह भी हिन्दी माध्यम से कम विद्यार्थी सफल होने का एक बड़ा कारण हो सकता है ।

प्रश्न : हिन्दी के महत्त्व और आवश्यकता को जानते हुए भी दक्षिण भारत के राज्य हिन्दी पर वर्चस्ववादी होने का आरोप लगाते रहते हैं। हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता को देखते हुए आप इसके बारे में क्या कहना चाहेंगे ?

उत्तर : दरअसल हिन्दी पर वर्चस्ववादी होने के आरोप मुख्य रूप से राजनैतिक पृष्ठभूमि के लोग अधिक लगाते हैं जिनका निहित स्वार्थ सत्ता हथियाना होता है । दूसरी तरफ मुझे हिन्दी भाषी शुद्धता वादियों और सरकार के राजभाषा विभाग के अहंकार और कट्टरता भी इसके लिए जिम्मेदार लगते हैं । हमें हिन्दी को उदार बनाना चाहिए और हमें हिन्दी को लेकर विनम्र और उदार बनना चाहिए । अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में सहज सरल हिन्दी के प्रचार की वैसी ही व्यवस्था करनी चाहिए जैसी हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के माध्यम से गाँधी ने शुरु की थी ।

प्रश्न : आपने हमें अपना बहुमूल्य समय दिया इसके लिए हम आपका आभार व्यक्त करते हैं । अंत में आप युवा पीढ़ी और पाठकों को क्या संदेश देना चाहेंगे ?

उत्तर : मेरा विचार है कि युवा पीढ़ी को अपना पूरा ध्यान अधिक से अधिक ज्ञान अर्जन पर केंद्रित करना चाहिए । ज्ञान के चार प्रमुख स्रोत हैं- किताबों का अध्ययन, महापुरुषों का सत्संग, भ्रमण और आत्म चिंतन । हमें इन चारों स्रोत से लाभान्वित होने के प्रयास करने चाहिए । दूसरे, युवाओं को श्रमदान के माध्यम से मेहनत मशक्कत के काम भी करने चाहिए जिससे उन्हें आलस की बीमारी न लगे और वे किसी काम को निम्नतर नहीं समझें । पाठकों से मेरा यह अनुरोध है कि वे खोज खोजकर अच्छा साहित्य पढ़ें । अच्छे साहित्य की खोज में श्रेष्ठ आलोचक उनकी मदद कर सकते हैं ।

गढ़वाली लोक संस्कृति और भाषा

डॉ. आशा बिष्ट

गढ़वाल की लोक संस्कृति से पहले हमें गढ़वाल शब्द उत्पत्ति के बारे में जानना जरूरी है। 'गढ़वाल' शब्द योग रूढ़ि है, अर्थात् 'गढ़वाला'। 'वाला' प्रत्यय है, जिसमें गढ़वाल शब्द योगिक हुआ है, 'गढ़' शब्द उन पहाड़ी किलों का बोधक है जो किले पर्वतों चोटियों पर अधिकता से पाये जाते है। इस प्रदेश में अधिक गढ़ होने के कारण 'गढ़वाल' रखा गया। गढ़वाल नाम से इस देश का सम्वत् 1557 और सम्वत् 1572 विक्रमी के बीच अर्थात् सन् 1500 से 1515 के बीच रखा जाना पाया जाता है तब से यह देश 'गढ़वाल' नाम से प्रसिद्ध है।[1] गढ़वाल नाम से पहले इस भू-भाग का नाम केदारखण्ड था। डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेष के अनुसार यहाँ बह रही छोटी बड़ी नदी का 'गाड़' शब्द प्रस्तुत होने से 'गाड' वाला क्षेत्र गढ़वाल से 'गढ़वाल' की व्युत्पत्ति बताते हैं[2]

गढ़वाल को प्राचीन साहित्य में इलावृत, ब्रामपुर, उत्तराखण्ड कीर्तिकेयपुर के नाम से ख्यात रहा है। जब यहाँ पर राजा अजयपाल ने छोटे-छोटे बावन गढ़ों को जीत कर एक छत्र राज्य की नीव डाली। सम्भवत् गढ़ों की अधिकता के कारण गढ़वाल नाम देना स्वाभाविक लगता है इस संबंध में विद्वानों ने कई व्युत्पतियों सुझाई है।[3] लोक शब्द प्राचीन काल से ही प्रयुक्त होता आ रहा है। लोक शब्द संस्कृत के लोक दर्शन धातु से प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ। इस धातु का अर्थ देखना होता है। जिसका लट् लकार में अन्य पुरूष एक वचन का रूप लोकते हैं। अर्थात लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला व्यवहार में लोक शब्द प्रयोग सम्पूर्ण जनमानस के लिए होता है।[4]

संस्कृति शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल से ही इस देश में संस्कृति की दो पृथक-पृथक धाराएं पल्लवित हुयी। (1) शिष्ट संस्कृति (2) लोक संस्कृति।

शिष्ट संस्कृति से तात्पर्य उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो कि बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ जो अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी तथा पथ प्रदर्शक था जिसकी संस्कृति का श्रोत वेद तथा शास्त्र था। लोक संस्कृति जन साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी। जिसकी उत्सभूमि जनता थी और बौधिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी। मानव शास्त्रीय दृष्टिकोण से लोक संस्कृति की परिभाषाएं निम्न हैं-

टायलर के ''अनुसार लोक संस्कृति वह सम्पूर्ण जटिलता हैं जिसमें ज्ञान विश्वास, कला, आधार, कानून प्रथा इस प्रकार की अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने को नाते प्राप्त करता हैं।''

एडबर्ड सापिर का मत है ''लोक संस्कृति मानव जीवन में प्राकृतिक आध्यात्मिक सामाजिक प्रदत्त तत्व है।[5]''

संस्कृति शब्द अत्यन्त व्यापक है सभी प्रकार के आचार-व्यवहार, खान-पान, कला, लोक गीत, धर्म, दर्शन आदि संस्कृति के अन्तर्गत निहित होते है किन्तु यह व्यक्ति निश्ठा न होकर समूह द्वारा किया जाता है। वैदिक प्रयास है मानव विभिन्न स्थानों पर रहते हुए विशेष प्रकार के सामाजिक वातावरण, संस्थाओं व्यवस्थाओं, धर्म दर्शन, लिपि, भाषा तथा कलाओं का विकास करके अपनी विशिष्ट संस्कृति का निर्माण करता है और संस्कृति को बनाने संचित करने तथा आगे बढ़ाने में लम्बा समय व्यतीत हो जाता है।[6]

गढ़वाल जनपद उस लोक संस्कृति से है जो लोकगीतों में अभिव्यक्त हुई वास्तव में लोक संस्कृति किस एक रूप में नहीं वरन कई रूपों में अपनी अभिव्यक्ति ढूंढती है। लोक संस्कृति किसी देश की महान संस्कृति को पृष्ठ बनाये रखती है और प्रभावित करती है। हमारा सारा प्राचीन इतिहास और साहित्य इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार लोक संस्कृति गढ़वाली, लोकगीतों पवाड़ो आदि समाज की उपज है।[7] लोकगीतों का विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने अध्ययन के आधार पर वर्गीकरण किया है। लोकगीतों के सर्वेक्षण संग्रह संकलन और सम्पादन के क्षेत्र में पं. रामनरेश त्रिपाठी का सर्वाधिक योगदान है। उन्होंने पहली बार लोक गीतों को ग्यारह शीर्ष में बाटा है:-

1) संस्कार संबंधी गीत
2) चक्की और चर्खे के गीत
3) धर्म गीत
4) ऋतु संबंधी गीत
5) खेती के गीत
6) भिखमंगों के गीत
7) मेले के गीत
8) विभिन्न जातियों के गीत
9) वीर गाथा
10) गीत और गाथा
11) अनुभव के वचन

गढ़वाल लोक गीतों की धारती है। हल चलाते, बीज बोते खेत निराते फसल काटते घास छीलते, ऊन काटते यहाँ न जाने कितनी स्वर लहरियों फूट पड़ती है। खेतों में फसले के साथ-साथ गीत भी उपजाते है। इसलिए लोकगीत जन-जन के स्वर, युग-युग के रंग मन-मन की तरंग सुख-दु:ख और जीवन के जीवन्त रूप में मिलते है। लोकगीतों का रूपात्मक श्रेणी विभाजन एक कठिन समस्या है।

लोकगीतों का जन्म किसी एक अभिप्राय की प्रेरणा से नहीं हुआ। जीवन की समस्त सूक्ष्म एवं जटिल क्रियाओं की अभिव्यक्ति लोकगीतों में हुई है। प्रत्येक स्थान के लोकगीत वहाँ की लोक संस्कृति और सभ्यता के परिचायक होते हुए जनता की तात्कालिक मनोभावनाओं के प्रतीक होते है।[9]

डॉ. गोविन्द चातक द्वारा किया गया लोकगीतों का वर्गीकरण–

1) पूजा गीत
2) मंगल गीत
3) प्रेम रूप रस
4) छोपती गीत
5) लामण
6) बसन्ती
7) बाजूबन्द
8) दाम्पत्य जीवन
9) खुदेड़ गीत
10) सामाजिक गीत
11) विविध गीत

डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश का वर्गीकरण–

1) माँगल आह्वान पूजागीत विवाह गीत लोरियों
2) झुमैलो वेदना प्रेमगीत झुमैलो
3) थड्या गीत वसन्ती गीत–होरी
4) बाजूबन्द–गीतात्मक संवाद
5) चाफैला मिलन गीत
6) खुदेड़ विरहगीत
7) चौमासा वर्षा गीत
8) बारामासा–बारह महीनों का वर्णन
9) सामाजिक गीत–बादियों के गीत
10) राष्ट्रीय गीत–राष्ट्र चेतना के गीत

प्रस्तुत है। मोहन लाल बाबुलकर द्वारा लोकगीतों का किया गया वैज्ञानिक वर्गीकरण:–

1) संस्कारों के गीत
2) देवी–देवता एवं त्यौहार गीत
3) खुदेड गीत
4) ऋतु संबंधी गीत
5) सामूहिक गीत
6) तन्त्र मन्त्र के गीत
7) लघु गीत
8) जातियों के गीत

गढ़वाली संस्कृति बहुत समृद्ध है, लोक संस्कृत भी अत्यन्त प्राचीन और विकसित है। गढ़वाली लोगों की जीवनशैली रहन–सहन में उनकी संस्कृति प्रदर्शित होती है, गढ़वाली लोक संस्कृति का मुख आकर्षण इतिहास यहाँ के लोग, धर्म, जाति, नृत्य, पवाड़े, चैती गाथाओं जो यहाँ पर राज्य करने वाले राजवंशों एवं जातियों के प्रभावों का एक सुन्दर समायोजन है। लोक नृत्य, लोकगीत, लोकगाथा, जागर एक अटूट बन्धन को जोड़ती है यहाँ के लोकगीतों में लोक संस्कृति का चित्रण अवश्य दिखायी देता है। इसमें लोक संस्कृति समाहित है। लोक गीतों का सम्बन्ध लोक जीवन के सुख–दुख के भाव से अभिव्यक्त होते हैं। लोकगीत वह धारा है जिसमें अनेक छोटी मोटी धाराएं मिलकर उसे सागर के समान गम्भीर बना देती है। जो हमारे रहन–सहन, रीति रिवाज, संस्कार, धर्म आदि परम्पराओं की रक्षा करती है।

गढ़वाली लोक संस्कृति में ऐसे अनेक लोकगीत मिलते हैं। नारी की उत्पीड़न के अनेक गीत मिलते है जैसे–खुदेड गीत, झुमैलों आदि उल्लेखनीय है। लोक गीत लोक जीवन के बीच से उपजते हैं। वे बनाए नहीं जाते वे हमारी गढ़वाली लोक संस्कृति के प्रतीत है।[11]

गढ़वाली लोक संस्कृति में लोकगाथा का जिक्र भी आया है, क्योंकि लोकगाथाओं में स्थानीयता की छाप होती है। इसकी प्रकृति आदर्शोन्मुखी होती है। इसमें जनसमुदाय एवं संस्कृति का चित्रण तथा व्यक्तियों का चित्रण बड़े चाव और गहरी श्रद्धा से मिलता है। यह सम्पूर्ण समाज की सम्पत्ति होती है। इसमें लोक जीवन और संस्कृति की कथा होती है।

जागर गाथाएं भी हमारी लोक संस्कृति के प्रतीक है। रात्रि में जागरण कर अथवा किसी माधयम के ऊपर देवी शक्ति को जागरगीत और गाथाएं दोनों रूपों में मिलते है। जिस प्रकार किमणी की गाथा, चन्द्रावली की गाथा कुसुमा कोलिन की गाथा सूजू की सुनारी की गाथा आदि के वैयक्तिक प्रेम के उल्लेख आते है। किन्तु अधिकांश प्रणय लीलाएं सामूहिक लोक–भावना के द्योतक है। पवाड़े चैती गाथाओं का भी एक स्वतन्त्र वर्ग निर्धारित किया था। जो लोक संस्कृति के माध्यम से आज भी इनका यशोगान किया जाता है।[12]

गढ़वाल में धर्म के साथ मृत्य कलाओं का घनिष्ठ संबंध रहा है। वहीं लोकगीतों की स्वयोसिद्धि है कि उसमें सदा से लोक समाहित रहा है। गढ़वाल की लोक संस्कृति मेलो त्योहारों संस्कार गीत आदि आज भी जीवित है।[13]

गढ़वाली भाषा का उद्भव कब हुआ? इस सम्बन्ध में पुष्ट प्रमाणों के अभाव में स्पष्ट रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है, तथापि अनुमान है कि वह आठवी–नवीं सदी के आस–पास अस्तित्व में आ गई थी। गढ़वाली भाषा के सम्बन्ध में एक विशेष रूप से हमारे सामने यह है कि गढ़वाली में पहले गद्य रचना प्रारम्भ हुई, पद्य की रचना उसके बाद। जब अन्य भाषाओं में पद्य रचना पहले, हुई और गद्य रचना उसके पश्चात। क्योंकि गढ़वाली भाषा में लिखित और मुद्रित में पद्य रचना सन् 1875 से पहले की नहीं मिलती है। फतेशाह के शासन काल में गढ़वाल में ब्रज भाषा साहित्य का सृजन भी प्रारम्भ हुआ। इसी काल में भूषण और मतिराम गढ़वाल में आये।

गढ़वाली भाषा पर वैदिक संस्कृति से लेकर लौकिक संस्कृति तक की सम्पूर्ण परम्परा की छाप और शब्द शैली का प्रभाव पर्याप्त रूप से दिखाई देता है। गढ़वाली बोली आठवीं-नवीं सदी के आस-पास अस्तित्व में आने लगी थी। पर वह लिखित रूप से विशेष: गद्य में उसका लेखन कब और कैसे प्रारम्भ हुआ है। इस विषय पर विचार करना आवश्यक है।

गढ़वाली भाषा के लिखित रूप में प्रमाणों की खोज करने पर हमारे समक्ष मोटे तौर पर शिलालेख लिखित रूप में आने के प्रमाणों की खोज करने पर शिलालेख लिखत (फरमान) और पुराने समय की चिट्ठी-पत्री तीन प्रमुख साधन हैं। इसके अतिरिक्त इस भाषा की प्राचीनता एवं महत्व को समझने के लिए लोकोक्ति-मुहावरे लोकगीत, लोकगाथा आदि कुछ अन्य साधन भी हैं। यदि उस युग में कागज, पेन, छापाखाना आदि उपलब्ध होते तो निश्चय ही इस भाषा का साहित्य आज अत्यधिक समृद्ध होता है।

लिखित रूप में गढ़वाली भाषा के गद्य की झलक हमें जिस शिलालेख में उपलब्ध होती है। धीरे-धीरे गढ़वाली भाषा मुद्रित रूप से सर्वप्रथम 1830 में प्रकट हुई। गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल प्रथम गढ़वाली साहित्य के नीव के पत्थर साबित हुये। इस प्रकार 1901 में गढ़वाली भाषा काव्य साहित्य को नव जीवन प्रदान करने वाले प्रमुख कवियों में-पंडित आत्माराम गैरोला, श्री सत्यशरण रतूड़ी, भवानी दत्त रतूड़ी, थपलियाल, तारादत्त गैरोला आदि गढ़वाली भाषा के उत्कृष्ट कवि थे।

इन गद्यकारों में डॉ. शिवान्द नौटियाल, मोहन लाल नेगी, दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल, प्रेमलाल भट आदि प्रसिद्ध है। अबोध बन्धु बहुगुणा की धोल नामक रचना आधुनिक सन्दर्भों से जुड़ा हुआ यह महाकाव्य गढ़वाल के प्रबन्ध काव्यों में अपना अन्यतम स्थान रखता है। विद्यासागर नौटियाल ने टिहरी की कहानियों नाम से एक कहानी संग्रह प्रकाशित किया। अन्य कवियों ने भी गढ़वाल की भाषा को आज भी जीवित रखा है।[14]

निष्कर्ष-गढ़वाली भाषा का जो साहित्य लिखा जा चुका है और जो आगे लेखक इस पर काम कर रहे है। वह वर्तमान समाज के लिए अच्छी राह है वैसे अगर देखा जाय तो गढ़वाली हिन्दी के बहुत निकट है। गढ़वाली भाषा पर काफी लेखक काम कर चुके हैं। जैसे पवाड़े मध्यकाल में रचे गए। 19 वीं शताब्दी में काव्य सृजन के कुछ प्रमाण मिलते है। यह काल भारतेन्दु के आस-पास ही ठहरता है। इस समय काफी कवि अवतरित हुए। गढ़वाली भाषाविद शिवप्रसाद डबराल का 'उत्तराखण्ड का इतिहास' भक्त दर्शन की 'गढ़वाल की दिवंगत विभूतियों' आदि कवियों का क्रमबद्ध संकलन लोकसाहित्य संबंधी कार्य विभिन्न लेखकों द्वारा संपादित स्मृति ग्रन्थ आदि इस युग की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं।

इस प्रकार गढ़वाली भाषा का साहित्य वर्तमान समय में पर्याप्त समृद्ध हो चुका है। इस दिशा में गढ़वाली साहित्यकारों का कार्य प्रशंसनीय है। उन्होंने एक ओर हिन्दी साहित्य में अपना योगदान देकर राष्ट्र भाषा को समृद्ध करने का प्रयास किया तो दूसरी और गढ़वाली भाषा साहित्य की उन्नति के लिए अथक प्रयास करते रहे हैं। गढ़वाली भाषा और उसके साहित्य की मिठास (रसात्मकता) अन्यत्र मिलनी कठिन है। गढ़वाली भाषा में कल और आज में काफी परिवर्तन हुये है। गढ़वाली भाषा में समयानुसार की दृष्टि से काफी प्रयास होता रहा है। काव्य क्षेत्र में नये-नये छन्दों और प्रयोगों में उसे अलंकृत करके नवीनता प्रदान की गई इसलिए गढ़वाली भाषा का वर्तमान साहित्य देश और काल की सीमाओं को तोड़कर बृहत्तर आशय प्रकट करने की क्षमता से उत्पन्न होता जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1) डॉ यशवंत सिंह कठोच, गढ़वाल का इतिहास, पृ.सं. 1-2
2) डॉ. आशा बिष्ट, गढ़वाल, का ऐतिहासिक, सामाजिक धार्मिक भावनाओं का अध्ययन पृ.सं. 3
3) डॉ. गोविन्द चातक गढ़वाली लोकगीत विविधता, पृ.सं. 13
4) डॉ. इन्दु यादव, लोक साहित्य, पृ.सं. 1
5) डॉ. इन्दु यादव, लोक साहित्य, पृ.सं. 78
6) डॉ. दिनेश चन्द्र बलूनी, उत्तरांचल संस्कृति, लोकजीवन इतिहास एवं पुरातत्व, पृ.सं. 17
7) डॉ. गोविन्द चातक गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.सं. 9-12
8) मोहनलाल बाबुलकर, गढ़वाली लोकसाहित्य की प्रस्तावना, पृ.सं. 70
9) डॉ. आशा बिष्ट, गढ़वाली लोक गाथाओं में वर्णित लोक संस्कृति और जन-जीवन, पृ.सं. 59
10) मोहन लाल बाबुलकर, गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना, पृ.सं. 70-72
11) डॉ. गोविन्द सिंह चातक, गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.सं. 44
12) डॉ. गोविन्द सिंह चातक, गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.सं. 221-225
13) चन्द्रपाल सिंह रावत, गढ़वाल और गढ़वाल, पृ.सं. 184
14) गढ़वाली साहित्य संकलन, पृ.सं. 4-11

-डॉ. आशा बिष्ट
असिस्टेन्ट प्राफेसर (हिन्दी विभाग)
बी.जी.आर. परिसर पौड़ी
हे.न.ब.ग. विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

''हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है ।''

-वी. कृष्णस्वामी अय्यर

चमत्कार लोक भाषाओं का

मराठी भाषा का उद्भव, विकास व इतिहास

डॉ. विनीता शुक्ला

मराठी भाषा के परिचय के आधार पर मराठी भाषा का इतिहास, मराठी भाषा का साहित्य व मराठी भाषा की लिपि संबंधी जानकारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। मराठी भाषा भारत के महाराष्ट्र प्रांत की राजभाषा है। महाराष्ट्र की अधिकांश जनसंख्या बोलचाल के लिए मराठी भाषाका ही प्रयोग करती है। भाषाई परिवार के आधार पर यह भाषा आर्य भाषा के अंतर्गत आती है। मराठी भाषा भारत की प्रमुख भाषाओं की श्रेणी में आती हैं। महाराष्ट्र के साथ-साथ मराठी गोवा की राजभाषा और पश्चिम भारत की सह राज भाषा है।

लोकप्रियता व प्रयोग के आधार पर यह भाषा विश्व में दसवें तथा भारत में तीसरे स्थान पर प्रतिस्थापित है। इसेबोलने वालों की संख्या अनुमानत: 10 करोड़ हो सकती है। यह अत्यंत प्राचीन भाषा है। मराठी भाषा की लिपि देवनागरी है, यही कारण है की मराठी भाषा की शब्द संरचना हिन्दी भाषा से मिलती-जुलती है। मराठी भाषा का व्याकरण भारतीय आर्य समूह की भाषा है। मराठी भाषा का व्याकरण आधुनिक इंडो-आर्यन भाषाओं के समान है।

हिन्दी, गुजराती तथा पंजाबी भाषाओं के व्याकरण में भी यही समानता पाई जाती है। हिन्दी व मराठी दोनों ही भाषाओं की देवनागरी लिपि होने के कारण मराठी भाषा की वर्णमाला को हिन्दी भाषा के माध्यम से समझना आसान हो जाता है।किसी भी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस भाषा का व्याकरण समझना अति आवश्यक होता है, इसलिए प्रस्तुत लेख में सबसे पहले हम मराठी भाषा के व्याकरण पर दृष्टिपात करेंगे।

मराठी भाषा का व्याकरण- मराठी व्याकरण वह विज्ञान है, जो मराठी भाषा को पढ़ने, लिखने व बोलने संबंधी नियमों की व्याख्या करता है। वर्ण, पद, शब्द, वाक्य, भाषा का उपयोग आदि व्याकरण के ही अंग हैं। मराठी भाषा भारतीय आर्य भाषा समूह की भाषा है, तथा मराठी भाषा का व्याकरण आधुनिक इंडो-आर्यन भाषाओं के समान है। मराठी व्याकरण की पहली पुस्तक पंडित भीष्मचार्य द्वारा लिखी गई थी।

मराठी भाषा के व्याकरण के अंतर्गत शब्द संरचना, वाक्यों का निर्माण तथा अनुवाद के नियम सम्मिलित होते हैं। इन नियमों के माध्यम से ही भाषा का उचित उपयोग किया जा सकता है। मराठी भाषा के व्याकरण में तीन लिंग-पुल्लिंग, स्त्रीलिंग व नपुंसक लिंग हैं। संख्याओं की गिनती के लिए एकवचन तथा बहुवचन का प्रयोग होता है। कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण तथा सम्बोधन कारक अनुवाद हेतु सहायक एवं आवश्यक हैं। मराठी व्याकरण में वर्णित क्रियाएं वर्तमान काल, भूत काल व भविष्य काल को दर्शाती हैं।

मराठी भाषा में हिन्दी भाषा के समान ही वाक्य तीन प्रकार से बनाए जाते हैं। पहला सरल वाक्य, दूसरा संयुक्त वाक्य तथा तीसरा मिश्रित वाक्य। संज्ञा का प्रयोग विशेष संज्ञा तथा सामान्य संज्ञा के रूप में होता है। इसी आधार पर विशेषण तथा प्रत्यय का प्रयोग भी मराठी व्याकरण में किया जाता है। मराठी भाषा के व्याकरण पर हिन्दी तथा संस्कृत भाषा का व्यापक प्रभाव है। संस्कृत भाषा की शब्दावली समान शब्दों के रूप में मराठी भाषा में आ गई हैं। यही कारण है कि संस्कृत भाषा में समान शब्दों का प्रभाव मराठी भाषा विज्ञान में परिलक्षित होता है।

मराठी भाषा व्याकरण पर भारतीय- यूरोपीय भाषा की तुलना में फारसी, राजस्थानी तथा गुजराती भाषा का प्रभाव अधिक पाया जाता है। मराठी भाषा भारत की एक समृद्ध, सशक्त व विकासशील भाषा की श्रेणी में प्रतिस्थापित है, अब हम मराठी भाषा के स्वरूप, उद्भव व विकास के आधार पर उसके इतिहास तथा साहित्य का अध्ययन करेंगे।

भाषा का स्वरूप- भाषा एक संस्कार है, क्योंकि भाषा श्रवण, अनुकरण, निरीक्षण के माध्यम से आत्मसात कर ली जाती है। हमारे चारों तरफ के परिवेश में रहने वाले लोगों की भाषा सुनकर उनके संबंधों से तादात्म्य स्थापित कर हम भी वैसी ही भाषा बोलने लगते हैं। उस भाषा के प्रयोग के कारण मीमांसा नहीं करने लगते हैं। हमें हर क्षण ऐसा एहसास होता है कि हमारे आस-पास रहने वाला समुदाय जो भाषा बोलता है, अगर हम उसका अनुकरण नहीं कर पाते तो उस समुदाय के साथ हमारा व्यवहार असंभव सा हो जाएगा। यही कारण है कि हम अपना आशय स्पष्ट करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

स्वाभाविक रूप से ही उस तरह की भाषा का प्रयोग करने लगते हैं। कुछ समय के पश्चात तो हमें उस भाषा की इतनी आदत सी पड़ जाती है कि आवश्यकता पड़ने पर हम स्वाभाविक रूप से वो भाषा बोलने लगते हैं। मराठी भाषा आर्यभाषा के कुल में उत्पन्न हुई है। इस भाषा का अति प्राचीन प्रारम्भिक स्वरूप और उस स्वरूप की मराठी के आधुनिक रूप में परिणति होने तक के प्रवास के मध्य मराठी भाषा ने जो विविध स्वरूप धारण किए वे तत्कालीन वाग्मय पाणिनी, संस्कृत, प्राकृत व अन्य भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से जाने जा सकते हैं।

किसी भी भाषा के उस अवस्थान्तर के संबंध में कुछ भाषाविद यह सिद्धांत सामने रखते हैं कि कोई भाषा जब अपनी बोली के स्वरूप से शुद्ध साहित्यिक स्वरूप धारण करती है, तब उस भाषा का यह साहित्यिक स्वरूप एक नई भाषा को जन्म देता है। इस सिद्धांत के परिणामस्वरूप कहा जाता है कि वैदिक संस्कृत से जिस समय साहित्यिक संस्कृत भाषा बनी उस समय बोली के रूप में

प्राकृत भाषा का जन्म हुआ। प्राकृत भाषा में साहित्यिक सृजन प्रारंभ होने पर प्राकृत भाषा ने अपनी बोली का उत्तराधिकार अपभ्रंश को प्रदान किया। तत्पश्चात कालक्रमानुसार अपभ्रंश भाषा की साहित्यिक भाषाओ में परिणति होने पर सिन्धी, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि भाषाएं विभिन्न प्रांतों में बोली जाने लगी। किन्तु यह सिद्धांत स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता क्योंकि अगर किसी भाषा के जन्म का कारण उसके पूर्व भाषा का साहित्यिक स्वरूप प्राप्त होना है तो हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली आदि भाषाएं इस समय अपने साहित्यिक स्वरूप के उत्कृष्ट शिखर पर विराजमान हैं। अत: उपरोक्त सिद्धांत के अनुसार उनसे दूसरी भाषा का जन्म होना चाहिए परंतु अभी ऐसे तो कोई लक्षण दिखाई नहीं देते। किन्तु यह कहना सत्य परक है कि आर्यभाषा के आद्य स्वरूप में उसके परिवर्तनशील कालक्रम ने अपनी छाप अवश्य छोड़ी और इसी का परिणाम पूर्व वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाएं हैं।

मराठी भाषा का इतिहास उद्‌भव और विकास

मराठी भाषा के उद्‌भव के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कोई मराठी भाषा को वैदिक भाषा से उत्पन्न मानते हैं, और कोई इसकी जननी की पद संस्कृत भाषा को देता है। कई विद्वान पालि से मराठी भाषा का संबंध जोड़ते हैं तो कई इस भाषा का जन्म प्राकृत से मानते हैं। कुछ विद्वान महाराष्ट्री को मराठी के मातृपद पर प्रतिस्थापित करते हैं तो अनेक विद्वान अर्धमागधी को सम्मान देते हैं। कुछ विद्वान तो उपरोक्त सभी मतों को एक तरफ करके अपभ्रंश को मराठी की जन्मदात्री मानते हैं। इन सभी मतभेदों का प्रधान कारण उपरोक्त सभी भाषाओं के मराठी भाषा में दिखने वाले न्यूनाधिक अवशेष हैं। वर्ण, प्रत्यय एवं प्रयोग की प्रक्रिया ये तीनों ही किसी भी भाषा के आधार स्तम्भ होते हैं। अत: यदि हम वर्ण, प्रत्यय व प्रयोग के अनुसार अध्ययन करें तो ऊपर वर्णित किसी भी भाषा का प्रभाव मराठी भाषा पर नहीं दिखाई देता। इसी कारणवश मराठी भाषा की उत्पत्ति संबंधी विभिन्न मत सामने आते हैं, जो इस प्रकार है–

मराठी भाषा का इतिहास प्रथम मत– प्रथम मत के अनुसार वेद समकालीन जो बोलियाँ थी, उनसे मराठी भाषा उत्पन्न हुई। इस मत का आधार मराठी भाषा में वैदिक संस्कृत भाषा तथा अन्य प्रचलित भाषाओं की तुलना में मिलती-जुलती विशेषताओं का होना है, परंतु मात्र इस तर्क के आधार पर मराठी भाषा की उत्पत्ति संबंधी इस मत की पुष्टि नहीं हो सकती।

मराठी भाषा का इतिहास दूसरा मत– दूसरा मत मराठी भाषा की जननी संस्कृत भाषा को स्वीकार करने का पक्षधर है, लेकिन वर्णों में अंतर तथा उच्चारण में भिन्नता साथ ही प्रयोग की दृष्टि से इन दोनों भाषाओं के मध्य की कालावधि में बहुत सी प्राकृत भाषाओं का होना है। अत: संस्कृत भाषा को मराठी भाषा की जननी कहना अस्वाभाविक एवं अशास्त्री होगा।

मराठी भाषा का इतिहास तीसरा मत– तीसरा मत मराठी भाषा की उत्पत्ति बाल भाषा से मानता है। बाल भाषा का तात्पर्य अगर हम प्राकृत भाषाओं से मानें तो भी इस प्रकार के अस्पष्ट विधान से इस विवाद का समाधान संभव नहीं है, क्योंकि उस समय अनेकों प्राकृत भाषाएं अस्तित्व में थीं। अत: इस मत को अपने स्पष्टीकरण के लिए किसी एक प्राकृत का नाम बता कर उसके लिए प्रमाण देने होंगें। इसी क्रम में मराठी भाषा की उत्पत्ति संबंधी कुछ मतों में पालि, मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश आदि भाषाओं में मराठी भाषा की समानता के अनेक प्रमाण सामने आते हैं। इसलिए किसी एक भाषा से मराठी का उद्‌भव निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा ने मराठी भाषा के निर्माण में अपना अत्यधिक सहयोग प्रदान किया।

समय सीमा– नारद स्मृति में उल्लिखित भाषाओं में मराठी भाषा को भी स्थान प्रदान किया गया है। इस आधार पर मराठी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास पांचवी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक हुआ। मराठी भाषा के शब्द विशेष ईसवीं सन् 683 से मिलने वाले शिला लेखों एवं ताम्र लेखों में प्राप्त होते हैं। संभवत: 700 ईसवीं के लगभग मराठी को बोली भाषा का स्वरूप प्राप्त हुआ होगा।

मराठी का प्राचीनतम उत्कीर्ण लेख 933 ईसवीं का है। मैसूर के निकट श्रवण बेल गोला में गोमतेश्वर की विशाल प्रस्तर मूर्ति के नीचे मराठी और कन्नड भाषाओं में 'श्री चामुंडराज्येकरवीयले' नामक वाक्य अंकित है। इस लेख से स्पष्ट है कि उस समय मराठी का प्रथक स्वरूप विद्यमान था तथा मराठी भाषा एक प्रचलित भाषा थी। 973 से 1230 ई. के बीच छ: और उत्कीर्ण लेख प्रस्तुत हुए हैं, जो मैसूर, थारदेश आदि की परस्पर दूरी पर है। यह इस बात का सूचक है कि मराठी भाषा अत्यंत विस्तृत भूखंड में विद्यमान थी।

मराठी साहित्य काल विभाजन– अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मराठी साहित्य के विकास क्रम को कालों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार है–

1) यादव काल या ज्ञानेश्वर युग
2) बहमनी काल या वारकरी संत युग
3) शिवराज काल या तुकाराम दास युग
4) पेशवा काल या पंत युग
5) ब्रिटिश काल या अर्वाचीन युग
6) स्वतंत्रोतर काल या नवलेखन युग

इन छ: काल खंडों के विभाजन के अनुसार अब हम मराठी साहित्य के विकास का अध्ययन करेंगे।

मराठी साहित्य का विकास– उच्च कोटि का मराठी साहित्य बारहवीं शताब्दी से प्राप्त होना प्रारंभ होता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है, कि इस समय तक मराठी भाषा को साहित्यिक स्वरूप प्राप्त हो चुका था। किसी भी भाषा के साहित्य पर तत्कालीन राजनैतिक सत्ता और राजनीति का बहुत प्रभाव पड़ता है। मराठी के

शेष पृष्ठ संख्या 29 पर

असम के प्रवासी भाषिक समुदाय और हिन्दी

डॉ. जाहिदुल दीवान

वर्तमान में हिन्दी का पर्याप्त प्रचार-प्रसार हो रहा है । अपने देश में संपर्क भाषा के रूप में उभर कर आने वाली हिन्दी भाषा विश्व पटल पर भी अपना मान बढ़ाती जा रही है । हिन्दी भाषा में इतनी क्षमता तो है कि वह भारत के जनमानस की बोली और साहित्य की भाषा बन सकी । संपर्क भाषा के रूप में भी हिन्दी का महत्वपूर्ण योगदान है । इस प्रकार हिन्दी पूरी दुनिया के साथ-साथ अपने देश के कोने-कोने तक फैल चुकी है । ऐसे में हिन्दी का मूल स्वरूप प्रवासी भाषा जैसी बन गयी है । किसी भी क्षेत्र में जब बाहर से लोग आकर बसते हैं तो स्थानीय लोगों के साथ मिलने-जुलने में उनको थोड़ा समय लगता है । एक-दूसरे के साथ बात करने के लिये भाषा का आदान-प्रदान होना अनिवार्य है । इस आदान-प्रदान की प्रक्रिया में हिन्दी का महत्व ज्यादा बढ़ा है । इसी संदर्भ में हम 'असम के प्रवासी भाषिक समुदाय और हिन्दी' पर विशेष बातचीत कर सकते हैं । असम पूर्वोत्तर भारत का प्रमुख राज्य है । यह राज्य पूरी तरह मिश्रित संस्कृति का वाहक है । एक तरफ इसमें पहाड़ी संस्कृति के लोग रहते हैं तो दूसरी तरफ मैदानी संस्कृति की जनसंख्या भी इसमें काफी मात्रा में हैं । जैसे कि हम जानते हैं कि किसी भी जगह की संस्कृति उस जगह से जुड़े सभी तत्वों से मिलकर बनती है । भाषा-समाज, खान-पान, पोशाक-परिधान, उत्पादन पद्धति आदि का योगदान संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण होता है । दूसरी बात, जब किसी स्थान पर रहने वाले लोगों में ऊपर उल्लिखित सभी तत्व एक समान पाए जाते हैं तो वहां एकल संस्कृति विकसित हो सकती है । लेकिन जहां उल्लिखित तत्वों में विभिन्न कारणों से भिन्नता दिखाई देती है वहां मिश्रित संस्कृति जन्म लेती है । असम ऐसे ही मिश्रित संस्कृति का एक राज्य है । इसीलिए पूर्वोत्तर के बाकी राज्यों से असम की संस्कृति काफी भिन्न प्रकार की है ।

असम में भाषा एवं संस्कृति को लेकर स्थानीय और प्रवासी की मनोभावना आज भी बहुत प्रबल है । इसी भावना के चलते असम में कई बार बड़े स्तर पर भाषिक आंदोलन भी हुए हैं । पूर्व के उन भाषिक आंदोलनों ने जब-जब राजनैतिक रूप लिया है, तब-तब बड़ी मात्रा में तबाही भी मची है । उन आंदोलनों में असंख्य लोगों ने अपनी जान भी गवायी थी । ऐसे लोगों को असम में 'भाषा शहीद' का दर्जा दिया जाता है । कुछ भाषा शहीदों के नाम सरकारी रिकॉर्ड में भी दर्ज होंगे । असम में भाषा का मुद्दा आज भी पूरी तरह हल नहीं हुआ है । गाहे-बगाहे कुछ लोग गड़े मुर्दे उखाड़ने की तरह इस मुद्दे को भी हवा देते रहते हैं । रंगा-सियार सरीखे छद्म भेषी उन तथाकथित नेताओं को लोगों में विभाजन पैदा करके कई प्रकार के फायदे भी मिलते होंगे ।

असम में कितने भाषिक समुदाय के लोग रहते हैं ? यह निश्चित रूप से कह पाना मुश्किल है । क्योंकि असम एक ऐसा राज्य है जहां पूरे भारत से लोग आकर बसे हुए हैं । सरसरी तौर पर देखा जाए तो असम में निम्नांकित भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया जाता है-असमिया भाषा, अहोम भाषा, कछारी भाषा, कामरूपी भाषा, कार्बी भाषा, कोच भाषा, चकमा भाषा, जेमे भाषा, डिमाश भाषा, तिवा भाषा, देओरी भाषा, नोक्टे भाषा, बियाटे भाषा, बोड़ो भाषा, ब्रजावली भाषा, मिसिंग भाषा, म्हार भाषा, राजबोंग्शी भाषा, वाँचो भाषा, हफलौंगी हिन्दी इत्यादि । इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा, नेपाली भाषा, बांग्ला भाषा, मारवाड़ी भाषा, बगानिया भाषा, पंजाबी भाषा आदि बोलने वाले भी असम में काफी संख्या में पाए जाते हैं । ऊपर जितनी भी भाषाओं का उल्लेख किया गया है उनसे जुड़ी संस्कृतियां भी असमिया समाज में जीवंत हैं । समाज भाषाविज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो भाषा सम्पर्क, भाषिक आदान, भाषाद्वैत (डायग्लोसिया), द्विभाषिकता एवं बहुभाषिकता, कोड-मिश्रण और कोड-परिवर्तन, भाषिक परिवृत्ति, मातृभाषा अनुरक्षण; जैसी अनेक प्रवृत्तियां असम के भाषिक परिदृश्य में दिखाई पड़ती हैं । आज से कई दशक पहले असमिया भाषा को असम की प्रमुख भाषा बना दी गयी थी । इस निर्णय को लेकर असम के दोनों घाटियों (ब्रह्मपुत्र और बराक) में जोरदार विरोध परिलक्षित हुआ था । सबसे ज्यादा विरोध बांग्ला भाषी लोगों की ओर से हो रहा था । सन् 2011 की जनगणना के अनुसार असम की कुल जनसंख्या का 28.92 प्रतिशत लोग बांग्ला भाषी हैं, वहीं 48.43 प्रतिशत लोग असमिया भाषी हैं । जब असमिया भाषा को असम की आधिकारिक भाषा बनाने की मांग जोर पकड़ने लगी थी तो बांग्ला भाषी लोगों ने उसका विरोध करते हुए कहा था कि असमिया एक दक्ष भाषा नहीं हैं, इसीलिए इसे किसी राज्य की प्रमुख भाषा बनाने की मांग बिल्कुल गलत है । साथ ही उन लोगों ने यह भी तर्क दिया था कि बांग्ला एक समृद्ध भाषा है, असमिया भाषा-साहित्य के विकास में बांग्ला भाषा का योगदान अविस्मरणीय है । अत: बांग्ला भाषा को असम की प्रमुख भाषा घोषित किया जाना चाहिए । हालांकि यह मांग असम की जनभावना के खिलाफ थी ।

इसीलिए इस संघर्ष में बांग्ला के समर्थकों को सफलता हासिल नहीं हुई थी । असमिया निश्चित तौर पर असम के सभी तबके के लोगों की प्यारी भाषा है । इस भाषा की उन्नति और सुरक्षा की चिंता करना सभी सच्चे असमिया लोग अपना नैतिक कर्तव्य समझते हैं । भाषा की उन्नति और संघर्ष की इस लड़ाई में असमिया की जीत हुई थी । सन् 1964 में असमिया भाषा को संवैधानिक दर्जा दिया गया । वर्तमान असम में हिन्दी बोलनेवाले कई समुदाय के लोग हमें मिलेंगे । लेकिन उनमें से कुछ ही समुदाय ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी है । उल्लेखनीय है कि हिन्दी में संवाद करनेवाले अधिकांश असमवासी लोगों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है । असम में

रहनेवाले जिन लोगों की संवाद की भाषा हिन्दी है उनमें सिख, मारवाड़ी और बिहारी समुदाय का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इन समुदायों की मूल भाषा इनके संवाद की भाषा से बहुत अलग है । लेकिन संवाद करते समय वे हिन्दी का मानक रूप 'खड़ी बोली' हिन्दी में बात करने का प्रयास करते हैं । इसलिए भाषा की दृष्टि से असम के प्रवासी समुदायों के बीच एकरूपता दिखाई देती है, लेकिन वास्तविकता इसके बिलकुल विपरीत है । हमने ऊपर जिन तीन समुदाय के संदर्भ में बात की है वे अपनी भाषा-संस्कृति, रहन-सहन, धर्म-दर्शन आदि की दृष्टि से एक दूसरे से काफी अलग हैं । लेकिन भाषागत एकरूपता के आधार पर असम के स्थानीय लोगों ने उन्हें 'हिन्दी भाषी' के खांचे में डाल दिया है । इन समुदायों के लोग असमिया भाषा से भी उतना ही प्रेम करते हैं जितने कि वे अपनी मूल मातृभाषा अथवा हिन्दी से करते हैं । हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो अपने क्षेत्र से निकलकर दूर-दूर तक फैल गयी है । वैसे तो इस भाषा के अंतर्गत 17 बोलियां हैं जिनकी न जाने कितनी ही उपबोलियां मौजूद होंगी ! इस दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी सामूहिक भाषा भी कही जा सकती है । हिन्दी भाषा की बोलियों का क्षेत्र मुख्य रूप से उत्तर भारत है; यह बात हम सभी जानते हैं, लेकिन अपने क्षेत्र से बाहर हिन्दी कहां-कहां फैली हुई है ? इस प्रश्न पर भी गंभीरता से विचार करना आवश्यक है । हिन्दी भाषा के भौगोलिक विस्तार को लेकर कई विद्वानों ने अब तक महत्त्वपूर्ण काम किया है । केवल भारत ही नहीं, भारत के बाहर भी हिन्दी किस-किस देश में पहुंची है इस पर भी विचार-विमर्श किया जा चुका है । पहले किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि भारत के अंदर दो-प्रकार के क्षेत्र हैं जहां हिन्दी बोली जाती है । पहला है- हिन्दी भाषी क्षेत्र और दूसरा है- अहिन्दी भाषी क्षेत्र । हिन्दी बोले जाने का तीसरा क्षेत्र 'विदेश' है। प्रस्तुत आलेख में हम असम के प्रवासी भाषिक समुदाय और हिन्दी पर बात कर रहे हैं । जैसा कि ऊपर भी कहा गया है- भारत में हिन्दी के दो-प्रकार के क्षेत्र हैं; हिन्दी भाषी क्षेत्र और अहिन्दी भाषी क्षेत्र । इस आलेख की मूल विषयवस्तु अहिन्दी भाषी क्षेत्र है । यह सर्वविदित है कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी गौण भाषा है । उन क्षेत्रों के लोगों की मातृभाषा कोई दूसरी भाषा होती है । जैसे- असम की भाषा असमिया, बंगाल की भाषा बांग्ला, पंजाब की भाषा पंजाबी, गुजरात की भाषा गुजराती, तमिलनाडु की भाषा तमिल इत्यादि । अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषी जनसंख्या 'भाषायी अल्पसंख्यक' है । ऐसा केवल हिन्दी भाषियों के साथ ही नहीं बल्कि विश्व के किसी भाषा के लोग अपने भाषिक क्षेत्र से बाहर जाकर 'भाषायी अल्पसंख्यक' बन जाते हैं । उल्लेखनीय है कि एक बहु-भाषिक और बहु-सांस्कृतिक समाज के निर्माण में भाषायी अल्पसंख्यकों की भूमिका सबसे अहम होती है । असम के हिन्दी भाषी लोग इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं । उन्होंने असम को समृद्ध बनाने के लिए क्या कुछ नहीं किया!

असम पूर्वोत्तर भारत का एक महत्त्वपूर्ण राज्य है । शिक्षा, व्यापार, रोजगार, पर्यटन आदि की दृष्टि से यह राज्य उत्तर-पूर्व भारत का प्रवेश द्वार है । दूसरी तरफ यह राज्य अपनी भाषिक अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान के लिए विशेष रूप से जाना जाता है । असम में मध्यकाल से प्रवासी लोगों के आगमन का प्रमाण मिलता है । हालांकि आस्ट्रिक, मंगोलीयन, द्रविड़ और आर्य जैसी विभिन्नं जातियां प्राचीन काल से ही इस प्रदेश की पहाडियों और घाटियों में समय-समय पर आकर बसी हैं और यहाँ की मिश्रित संस्कृति में अपना योगदान दे रही हैं । आज वही लोग असम के मूल बाशिंदें माने जाते हैं । मध्यकाल में मुगलों ने असम पर चढ़ाई की थी । उसके बाद औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों के हाथ में असम की सत्ता चली गयी थी । अंग्रेजों के दिनों से ही असम का वर्तमान स्वरूप बनना शुरू हो गया था । कहा जाता है- असम में हिन्दी भाषी लोगों का इतिहास दो-सौ साल पुराना है । आज से लगभग दो-सदी पहले ऊपरी असम में सिख लोगों के उपस्थित होने का प्रमाण मिलता है । वहाँ बना हुआ प्राचीन सिख गुरुद्वारा इसका प्रमाण है । लेकिन इस बात का कोई लिखित सबूत नहीं मिलता है कि सिख लोग किस तारीख को वहाँ जाकर कब बसे थे ? असम में कई जगहों पर सिखों का गुरुद्वारा मौजूद हैं । उनकी जनसंख्या भी ठीक-ठाक हैं । उल्लेखनीय है कि सिखों की भाषा है तो पंजाबी, लेकिन असम में उनकी पहचान हिन्दी भाषी समुदाय के रूप में ही है । दरअसल, असम में रहनेवाले हर एक समुदाय के लोगों को हिन्दी भाषी कहा जाता है जो वहाँ के स्थानीय लोगों से हिन्दी में बातचीत करते हैं । सरकारी आंकड़ों का माने तो असम में कुल हिन्दी भाषा-भाषियों की संख्या 5.88 % हैं जो असमिया (48.8%) और बांग्ला (27.5%) के बाद तीसरे स्थान पर है । उल्लेखनीय है कि असम में बोडो भाषी (4.8%), नेपाली भाषी (2.12%) तथा अन्य भाषा-भाषी (11. 8%) लोग रहते हैं । अन्य भाषा-भाषी लोगों में असम की छोटी-छोटी जनजातियां आते हैं । जनजातियों का इतिहास असम में सबसे पुराना है लेकिन उचित समय पर उनका विकास न हो पाने के कारण दूसरी जाति के लोगों ने उनके क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया है। असम के हिन्दी भाषी लोगों पर बात करते समय हमें वहाँ के दूसरे भाषा-भाषी समुदायों पर भी एक नजर डालना चाहिए जिससे कुछ रोचक तथ्य निकलकर सामने आ सकते हैं । इस बात पर गौर करना बेहद जरूरी है कि असम के असमिया भाषी और बांग्ला भाषी लोगों के अलावा बाकी सभी आपस में हिन्दी में ही बातचीत करते हैं। चाहे नेपाली हो या बोडो हो- सभी लोग बहुत अच्छी असमिया बोलना जानते हुए भी अपने समुदाय के बाहर के लोगों से हिन्दी में ही बात करते हैं । इसी तरह असम की दूसरी जनजाति के लोग भी करते हैं । लेकिन यह भी सत्य है कि वे हिन्दी को केवल एक संपर्क भाषा के रूप में अपनाते हैं; जैसे- उन्होंने अंग्रेजी को अपनाया है । लेकिन वे खुद को कभी भी हिन्दी भाषी के रूप में परिचित नहीं कराएंगे । असम के हिन्दी भाषी लोगों में तीन धार्मिक समुदाय प्रमुख हैं- हिंदू, सिख और जैन सम्प्रदाय । हिंदू तो धार्मिक दृष्टि से असम के

बहुसंख्यक लोगों में आते हैं लेकिन भाषिक दृष्टि से असम के कुछ हिंदू लोग अल्पसंख्यकों में भी आते हैं । वर्तमान असम में जितने हिन्दी भाषी अल्पसंख्यक मौजूद हैं, उनके पूर्वजों का विभिन्न कारणों से वहाँ प्रवास हुआ था । शुरू-शुरू में वे रोजगार की तलाश में असम आए होंगे । बाद में मौका देख कर वे वहीं बस गए ।

असम में आज जितने प्रवासी हिंदू हिन्दी भाषी हैं उनमें से प्राय: सभी का मूलनिवास बिहार प्रदेश है । ये लोग बिहारी बोली-मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि को बोलचाल के रूप में अपनाते हैं । असम के हिन्दी भाषी लोगों ने अब असमिया, बांग्ला आदि भाषाओं में भी बात करना सीख लिया है । असम में बिहारी हिन्दी भाषियों की संख्या सबसे ज्यादा है । इस समुदय के लोग राज्य के कोने-कोने में बसे हुए हैं । लेकिन उनकी सामाजिक स्थिति दूसरे हिन्दी भाषियों की तुलना में अपेक्षाकृत बहुत कमजोर है । आज भी असम में उनको निम्नस्तर के कामों से ही पहचाना जाता है । बिहारी, जिनका असम में प्रवास हुआ था, वे अपने समाज के दबे-कुचले लोग थे । उनको शुरू से ही केवल जीने भर के साधनों से ही मतलब था । चाय बागान का काम, मजदूरी, सफाई का काम आदि असम में अधिकांश बिहारियों के रोजगार के साधन थे । उन्होंने शिक्षा-दीक्षा या सामाजिक विकास को कभी वरीयता ही नहीं दी । अपने पूर्वजों द्वारा की गयी इसी गलती की सजा, आज भी नई पीढ़ी के लोग भूगत रहे हैं । आज असम के सर्वाधिक पिछड़े हुए लोगों में बिहारी हिन्दी भाषी लोगों की गिनती होती है, जिसके लिए उनको तिरस्कार भरा जीवन जीना पड़ रहा है । हलांकि इसके लिए असम के मूल निवासी कतई जिम्मेदार नहीं ठहराए जा सकते । उन्होंने सबको समान विकास करने का पूरा अवसर प्रदान किया है । कोई पीछे रह गए इसके लिए पिछड़े लोग खुद जिम्मेदार हैं । वैसे तो असम में सभी हिन्दी भाषियों की सामाजिक स्थिति एक जैसी है, लेकिन उनमें सिख और मारवाड़ी समुदायों को थोड़ा अलग रूप में देखा जाना चाहिए । इन दो समुदायों की सामाजिक स्थिति बिहारियों की तुलना में थोड़ा बेहतर है । इसका कारण उनके हिन्दी भाषी होना नहीं है बल्कि इसका श्रेय उनकी आर्थिक स्थिति को जाता है । सिख और मारवाड़ी- ये दोनों ही समुदाय असम में व्यापारी वर्ग के रूप में जाने जाते हैं । असम के सकल घरेलू आय में उनकी हिस्सेदारी को कभी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता । इसके लिए असम के स्थायी लोग सिख और मारवाड़ियों के ऊपर निर्भरशील हैं । जिस रूप में बिहारियों ने असमिया भाषा एवं संस्कृति को अपनाया है उतना सिख और मारवाड़ियों ने नहीं अपनाया । असम में रहते हुए भी उन्होंने अपनी भाषिक और सांस्कृतिक पहचान को खोने नहीं दिया है । दूसरी तरफ मूल असमिया भाषियों ने भी कभी सिख और मारवाड़ियों से अपनी भाषा-संस्कृति के प्रति चुनौती महसूस नहीं की होंगी । केवल राजनीतिक कारणों से इन लोगों को निशाना बनाये जाने को भाषिक विरोध के रूप में देखा जाना ठीक नहीं है । मूल असमिया भाषियों का सर्वाधिक विरोध वहाँ की दूसरी बड़ी भाषा बांग्ला के लोगों से है। असम के इतिहास में भाषा के नाम पर जिन आंदोलनों के किस्से दर्ज हैं, उनमें से सर्वाधिक असमिया और बांग्ला की वरीयता के मुद्दे को लेकर ही घटित हुए है ।

समय के साथ-साथ लोगों की मानसिक स्थिति में भी बदलाव आता है । जहाँ असम के अधिकांश बांग्ला भाषी लोगों ने असमिया भाषा को अपनी मातृभाषा की स्वीकृति दी है वहीं हिन्दी भाषी लोगों की सामाजिक अस्मिता की लड़ाई भी जारी है । चाह जनजाति (बिहारी), मारवाड़ी, सिख आदि समुदाय के लोगों ने अपनी भाषा एवं संस्कृति की रक्षा के हित में संगठन बनाया है । उन संगठनों के माध्यम से अपने हित के लिए कभी-कभी सड़क पर भी आंदोलन किया जाता है । ऐसी स्थिति पहले नहीं थी । पहले तो केवल मूल असमिया भाषियों के हित में जो होते थे उन्हें ही स्वीकृति मिलती थी । असम में अपने हक के लिए लड़ना किसी भी प्रवासी के लिए मुमकिन नहीं था लेकिन अब जमाना बदल रहा है । सोशल मीडिया के इस दौर में कोई भी बड़ी आसानी से अपने अधिकार की बात दूसरों तक पहुँचा सकता है । आजकल ऐसा देखा जा रहा है कि वर्षों से संघर्षशील असम के बिहारी हिन्दी भाषियों की मांग आज आप कहीं से भी सुन सकते हैं । इसी तरह मारवाड़ी और सिख हिन्दी भाषियों ने भी अपनी मांग उठाने का अनोखा तरीका ढूंढ़ निकाला है। इन सबकी जानकारी पाने के लिए एक बार फेसबुक या यूट्यूब पर लौटना होगा ।

अत: असम के हिन्दी भाषियों में प्रमुख सिख, मारवाड़ी और बिहारी समुदायों का अध्ययन करके पता चलता है कि भाषा की दृष्टि से उनमें काफी बदलाव आया है । ऊपरी असम के बहुत से सिख लोग असमिया को ही अपनी मातृभाषा मानते हैं । उन्होंने पंजाबी या हिन्दी सीखी है तो केवल धार्मिक कारण से । उन्होंने अपने धार्मिक ग्रन्थ का अनुवाद असमिया भाषा में किया है । कुछ सिख हैं जो पंजाबी या हिन्दी में बातचीत करते हैं । मारवाड़ी लोग भी असमिया बोलते हैं । असमिया में लिखते-पढ़ते भी हैं । लेकिन मारवाड़ियों में अपनी मूल भाषा से अलगाव कम दिखाई देता है । वे असमिया केवल सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से ही सिखते हैं । बिहारी समुदाय के लोगों ने दूसरी प्रकार की भाषा का विकास कर लिया है । उनकी भाषा भोजपुरी और असमिया भाषा के मिश्रण से बनी है । असमिया बिहारियों की भाषा सुनने में बहुत ही अनूठी लगती है । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि असम में हिन्दी भाषियों का स्थान अभी भी निर्णायक स्थिति तक नहीं पहुँची है । शायद आने वाले दिनों में बहुत से परिवर्तन और भी देखने को मिलें ।

-डॉ. जाहिदुल दीवान

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विश्व पटल पर हिन्दी भाषा और साहित्य

वर्तमान ही शाश्वत है क्योंकि भूत बीत गया और भविष्य अभी आया ही नहीं । वर्तमान ऐसा संधि-बिंदु है जहाँ से व्यक्ति कालों का खाका मानस-पटल पर रेखांकित कर सकता है । उस काल संदर्भ में हिन्दी भाषा पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विमर्श करने से पहले कई संभावनाएँ, आशंकाएँ एवं प्रश्न मन में उठते हैं । क्या हिन्दी महज भाषा है? क्या स्वतंत्रता के पश्चात उसे वह सम्मान मिला जिसकी वह अधिकारिणी है ? हिन्दी को साहित्य की भाषा की दृष्टि से देखें या बाजार की ? विश्व हिन्दी को किस दृष्टि से देख रहा है ? हिन्दी के प्रति भारतीय जनता के दृष्टिकोण में क्या परिवर्तन आया है ? बाजार वाकई उसे स्थापित कर रहा है या विस्थापित ? आदि ऐसे कई प्रश्न । हिन्दी केवल भाषा ही नहीं है; वह भारत की अस्मिता और उसकी शक्ति की पहचान हैं । हिन्दी वह भाषा है, जिसमें अरबों लोगों ने अपनी माताओं से लोरियाँ सुनीं, यह वह भाषा है, जिसमें पिछले कई सौ वर्षों से अरबों लोग विचारों का आदान-प्रदान करते रहे हैं, यह भाषा वह सरस्वती है, जिसे अरबों लोग मरते समय अपना संदेश देने के लिए इस्तेमाल करते रहे हैं । यह वह भाषा है जिसने अफगानिस्तान, म्याँमार, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश सहित नेपाल, भूटान आदि देशों के अरबों लोगों को एक-दूसरे के साथ मिलाने का काम किया है । यह वह भाषा है जिसमें संत कबीरदास, गुरू नानक, सूरदास, महाकवि तुलसीदास, मीराबाई आदि ने इस भाषा के माध्यम से घोर अंधकार के समय भी निराशा को पनपने नहीं दिया ।

यह सर्वविदित है कि व्यक्ति और भाषा का अन्योन्याश्रित संबंध है । व्यक्ति से भाषा वजूद में आई और भाषा व्यक्ति की पहचान बनी । सभ्यता के विकास के साथ-साथ भाषा भी बोली, अपभ्रंश फिर परिष्कृत, परिमार्जित, मानक, पंचमेल, हिंगलिश ऐसे कई दौर से गुजरी और गुजर रही है । भाषा विकास के कुछ कारकों में मनुष्य भी एक कारक है । वैसे व्यक्ति अपनी मापक पट्टी से दूसरी वस्तुओं की नाप-तोल और तत्वों का मूल्यांकन करता आ रहा है । मूल्यांकन की कसौटी में उसके अपने पैरामीटर होते हैं । भाषा के संबंध में भी ऐसे कई कारक है जो उस पर विचार के लिए बाध्य करते हैं । कारक पर विचार का ही नतीजा है कि भाषा चिंतन का विषय बनी और यही चिंतन के विविध आयाम भाषा की समृद्धि के मानक बने ।

कभी प्रश्न उभरकर आता है कि क्या हिन्दी सचमुच समृद्ध हो रही है ? फिर समृद्ध माने क्या विकसित होना है ? क्योंकि समृद्धि अपने आप में विभिन्न कलेवरों को समेटे हुई है । विकास किसी पक्ष का हो सकता है किन्तु समृद्धता एकांकी हो ही नहीं सकती । वो अपने साथ अन्यों को भी लेकर चलती है; अन्यों का उत्थान भी करती है । फिर प्रश्न क्या राष्ट्र के उत्थान में हिन्दी सक्षम नहीं है ? या वह किसी की बैसाखी बनकर चल रही है ? हिन्दी

भागीनाथ वाकले

भाषी समर्थक पुष्टि कर देगा कि हिन्दी अन्य भारतीय भाषाओं, बोलियों को अपनी पनाह में, अपनी छाया में, अपनी ऊँगली देकर बड़ी बहन की भूमिका को समर्थता से निभा रही है । दूसरा दबी आवाज में कह देगा कि नहीं । इसके समर्थन में वह कह देगा कि आज भी हम अंग्रेजी की दासता से मुक्त नहीं हो पाए हैं। आज भी हम उसकी बैसाखी लेकर चल रहे हैं । संविधान सभा ने स्वतंत्र भारत में उस बैसाखी के सहारे की अनुमति केवल 15 साल के लिए दी थी किन्तु हमारे राजनीतिक हित संबंध एवं राजनीतिक स्वार्थ लिप्सा ने उसे हनुमान की पूँछ की तरह आज तक खींचा है, यह दुर्भाग्य की बात है । इस वनवास की समाप्ति कब होगी इसका अनुमान वर्तमान समय में संभव नहीं है । भविष्य के इसी खतरे को भापकर महात्मा गाँधी ने कहा था कि, "दुनिया को खबर कर दो, कि गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता, गाँधी अँग्रेजी को भूल चुका है ।'' गाँधी दूरदर्शी नेता थे । वे जानते थे कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि भाषाई गुलामी की गिरफ्त से भी मुक्ति आवश्यक है । गिरिजा कुमार माथुर ने स्वतंत्रता के उपलक्ष्य में निम्न पंक्तियाँ कही थी-

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गए लेकिन उसकी
छायाओं का डर है

इसका विवेचन करते हुए हम कह सकते हैं कि 'शत्रु हट गए लेकिन उनकी भाषाओं का डर है ।' यह 'छाया' उनके जाने के बाद भी भाषिक रूप से देश को घेरे हुई है । यह सही है कि देश की आजादी के बावजूद भाषा गुलाम रह सकती है । चार्ल्स वुड एवं मैकाले का उद्देश्य भी वही था कि अपने काम के लिए नौकरशाह तैयार करना तथा सुख-सुविधा की ऐसी होड निर्माण करना कि ब्रिटिश माल की खपत भारत में हो और बड़ा बाजार तैयार हो सके । साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी शक्तियाँ अपनी भाषा को किसी हितकारी, मंगलकारी एवं पवित्र उद्देश्य से नहीं लाई थी । बल्कि आंतरिक दासता को स्थायी करना चाहती थी और कमोवेश उसमें सफल भी हुई । आज इस छद्म भूमण्डलीकरण और उदारवाद ने देश को बाजार बना दिया है । बाजार की अपनी संस्कृति, जाति और भाषा होती है । उस भाषा का प्रयोग भी बाजारू संस्कृति को ध्यान में रखकर किया जाता है । उसका भाषा की आत्मा से कोई खास सरोकर नहीं होता क्योंकि उसका भाषा के प्रति दृष्टिकोण ही उपभोक्तावादी होता है । जब सोच में उपभोग हो तो केवल दोहन और शोषण होता है और आज हिन्दी के प्रति यही हो रहा है, किन्तु

हम दोनों हाथों से तालियाँ पीट रहे हैं । हिन्दी को रोजगारभिमुख, आधुनिक, ग्लोबल भाषा आदि न जाने क्या-क्या कहकर गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं । फिर खिचड़ी भाषा अर्थात हिंगलिश का प्रयोग करना प्रतिष्ठा एवं सौंदर्य का विषय समझ रहे हैं । हिन्दी की यात्रा जब अपने ही देश में ऐसा हो, तो विश्व पटल पर उसका परिदृश्य कोई सराहनीय एवं उल्लेखनीय नहीं हो सकता । हिन्दी को विस्थापित करने की बाकायदा सोची समझी साजिश है । हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों का सहर्ष स्वागत अंग्रेजी के भयंकर आक्रमण की हलकी शुरूआत है और यह 'स्लो पॉइजन' प्रकारान्तर से घातक एवं विनाशक सिद्ध हो सकता है और हुआ भी वही आजादी के तत्काल बाद देशी भाषाओं को राष्ट्रभाषा के नाम पर झगड़ता छोड़कर वह चुपचाप उस पीढ़ी को तैयार करने में संलग्न है, जो आगे चलकर स्वयं ही उसका उद्देश्य सिद्ध कर देनेवाली सिद्ध होगी । अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में वह शान से विराजी है ।

द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थी भी हिन्दी वर्णों को लिखने में असहजता महसूस करते हैं और हिन्दी को रोमन लिपि में लिख रहे हैं अर्थात राष्ट्रभाषा में से राष्ट्र, राष्ट्रीयता चुन-चुनकर निकालना आसान हो गया है । बाजार को अपनी वस्तुओं का गुलाम बनाने के लिए अपनी लिपि और अपनी भाषा चाहिए । इस दिशा में उसने फर्राटा दौड़ लगाई है । उसने घर में भी प्रवेश कर लिया है । हिन्दी में अंग्रेजी का प्रयोग प्रतिष्ठा का विषय बन गया है । अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रो. शंभुनाथ तिवारी कहते हैं कि, "हम हिन्दी को अंग्रेजी से सीख रहे हैं । माँ भी अपने बच्चे को कहती हैं कि किचन में जाकर राइस ले आओ । जब तक हम घर में भाषा का सही इस्तेमाल नहीं करेंगे तो परेशानी रहेगी। जब भाषा को उसके स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया जाएगा तो यह खुद ही अपना स्थान सुरक्षित करेगी ।'' अर्थात उनकी चिंता भाषाई मिलावट की है । बाजार हमें रोजगार दे रहा है लेकिन घर में यह भाषाई प्रयोग क्या दे रहा है ? समझ से परे है । किन्तु बाजार ने घर में प्रवेश कर लिया है । यह बाजार हमें रोजगार दे रहा है बस हम समझौता कर ले । समझौता अक्सर हितकारी नहीं होता वह मजबूरी का विकल्प भी होता है अर्थात प्रत्येक हिन्दी भाषी अपने को कमजोर समझता है और हीनग्रंथि बोध से पीड़ित है । आवश्यकता है अपने आप को समर्थ, काबिल एवं महान साहित्यिक विरासत की परंपरा वाली भाषा का सौभाग्यशाली समझने की ।

हिन्दी के विस्थापन की एक विराट चेष्टा है-लिखित भाषा के रूप में अंग्रेजी और वाचिक भाषा के रूप में हिन्दी । विद्यालय से लेकर बाजार तक सभी जगह लेखन की भाषा अंग्रेजी है और बोलचाल की हिन्दी । हम गर्व से कहते हैं कि अमुक-अमुक करोड़ लोग हिन्दी बोलते और समझते हैं किन्तु उसके पीछे का सत्य हम समझ नहीं पाते कि जो भाषा केवल बोली जाती है वह 'बोली' बनकर न रह जाए और पछताने के सिवा हमारे पास कोई चारा न रह जाए । खैर, अंग्रेजी का यह सारा खटाटोप दुनिया का सर्व चतुर्थ बाजार को हथियाना व अधिक मुनाफा कमाना है । यहाँ कच्चा माल, सस्ते मजदूर, कम जोखिम, कम अशांति किन्तु लाभ ही लाभ है । हम प्रफुल्लित होकर कह रहे हैं कि विदेशी कंपनियाँ आकर्षित हो रही है, हिन्दीवाले को रोजगार मिल रहा है । वास्तविकता वे जानते हैं कि बिना हिन्दी जाने एशिया के बाजार पर वर्चस्व स्थापित नहीं किया जा सकता इसलिए उनकी हिन्दी पढ़ने में रुचि या भाषा आत्मसात करने की ललक नहीं बल्कि इसके पीछे शतरंजी घोड़े की चाल एवं महा स्वार्थ है । बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आकर्षित करना, विदेशी निवेश के लिए प्रलोभन देना, केवल विदेशों में हिन्दी का बढ़ता प्रयोग देखकर गदगद होना, इलेक्ट्रानिक साधनों में हिन्दी का प्रयोग होते देखना अलग चर्चा का विषय हो सकता है, किन्तु यह हिन्दी की समृद्धता एवं विकास का लक्षण नहीं है । बल्कि अंग्रेजी कुटनीति का अंग है । हिन्दी के जरिये बाजार आगे बढ़कर देश को खरीद रहा है और हम खुश है कि देश आगे बढ़ रहा है, हिन्दी आगे बढ़ रही है और हिन्दीवाले आगे बढ़ रहे हैं । यह हमारा दुर्भाग्य है कि स्वाधीनता के लिए जिस भाषा का त्याग करके अपनी स्व: भाषा का वरण किया था, उसे ही आज हम हिन्दी के माध्यम से रोजगार का हवाला देकर बाजार के जरिये पुनप्रवेशित करने जा रहे हैं और सन 1600 की याद को ताजा कर रहे हैं । क्या हम उनके नापाक मनसूबों को भूल गए हैं ? कोई यह पूछनेवाला नहीं है कि यह जो देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी गई थी, क्या वह केवल इसलिए कि अंग्रेज देश छोड़कर चले जाएँ और अंग्रेजी बनी रहे ? अस्तु, कोई भी भाषा बाजार से नहीं बल्कि अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक विरासत से समृद्ध होती है । बाजारू हिन्दी से हिन्दी को नहीं बाजार को लाभ मिल रहा है । यह गहन चिंतन का विषय है और प्रबुद्ध जन को इस पर गहराई से सोचने की आवश्यकता है । क्योंकि बाजार एवं उसकी समूची इकाइयों ने हमारे 'बुद्धि पर मार' ऐसी कर दी है कि व्यापार, व्यवसाय, उद्योग, नौकरी, रोजगार सबके लिए अंग्रेजी का कोई विकल्प ही नहीं है या उसके बिना कोई उपाय ही नहीं जैसी सम्मोहन की धारणा बन गई है ।

विदेश में हिन्दी की दशा और दिशा पर मंथन करने से पहले आत्ममंथन की आवश्यकता है कि वह आज भी गुलामी क्यों भोग रही है । राम के वनवास समाप्ति की तिथि तो निश्चित थी, पर हमारे देश में हिन्दी के वनवास समाप्ति की कोई निश्चित तिथि नहीं है । संभवत हिन्दी को यही वनवासी सुख देने के लिए हम हिन्दी-सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ा जैसी कई नौटंकियाँ रचते रहते हैं जो केवल रस्म अदायगी भर रह गई है । सोच भी इसके पीछे साफ है कि हिन्दी अपने वनवास में सुखी रहे और अंग्रेजी राजमहलों की शोभा बढ़ाती रहे । बहरहाल, संविधान के सारे प्रावधानों,सारी घोषणाओं, सारी सद्भावनाओं, सारी नारेबाजियों के बावजूद हिन्दी की स्थिति चिंतनीय है । केवल मेले और तमाशे के आयोजन, प्रयोजन एवं दर्शन से हिन्दी की स्थिति एवं दर्जा नहीं सुधर सकता ।

इसके लिए प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को जमीनी स्तर पर प्रयास करना होगा । आज हमारे सामने कई चुनौतियाँ हैं । उसमें एक है कि हम खुद ही अपनी भाषा को वरीयता नहीं देते । जब विश्वविद्यालय में प्रवेश लेते हैं, तो हिन्दी सबसे अंत में नजर आती है । जो लेते है वे केवल उपाधि तक सीमित रह जाते हैं । महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति गिरिश्वर मिश्र कहते हैं कि "औपनिवेशिक परम्परा में हिन्दी को अयोग्य ठहरा दिया गया और उसके उपयोग को प्रतिबंधित कर दिया गया । एक उदाहरण काफी होगा कि गुवाहाटी विश्वविद्यालय हिन्दी के शोध प्रबंध को अंग्रेजी में ही स्वीकार करता है ।'' अर्थात देश में हिन्दी की इससे बड़ी दुर्गति या विडंबना क्या हो सकती है । अत: इस अव्यवस्था को पहले ठीक करना होगा । तभी हिन्दी का सम्मान होगा । तभी जाकर हम उसके उज्ज्वल भविष्य के लिए आशाभरी दृष्टि से देख सकते हैं । आज भले ही हिन्दी शिक्षा के प्रति यह उदासीनता के भाव हो लेकिन अवश्य सुदिन आएँगे । रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा है कि, "प्राचीन कवियों की कविता चिरकाल से आधुनिक है । हिन्दी भाषा रूपी खेत में लावों की सुनहली फसल है । वह भाषा भले ही कुछ दिन यों ही पड़ी रहे फिर भी उसकी उर्वरता नहीं मरती, जब खेती में सुदिन आएँगे तो फिर से नई फसल आएंगी ।''

सरकार भी हिन्दी को विशेष नहीं शेष दर्जा प्रदान करें । हिन्दी जहाँ नहीं है, वहाँ पहुँचे ऐसा प्रयास हो, प्रांतीय भाषाओं की अँगुली पकड़कर शेष में भी पहुँचे तो यही इसके लिए विशेष दर्जा होगा । उसे विशेष दर्जा नहीं शेष जगह में जगह चाहिए और यह सभी हिन्दी चिंतकों के सामूहिक प्रयास से ही संभव है । तभी हिन्दी की जड़े मजबूत हो सकती हैं । देश की संस्कृति को जिंदा रखा जा सकता है । बिना हिन्दी या भारतीय भाषा के संस्कृति जिंदा नहीं रह सकती । आज नहीं तो कल दुनिया को भारतीय संस्कृति की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि सभ्यता को चिरस्थायी रखने के सारे तत्व उसमें मौजूद है । निश्चित रूप से भारत की इमारत किसी विदेशी भाषा की नींव पर खड़ी नहीं की जा सकती है । वो प्रयास भी सार्थक नहीं है । समर्थ, सशक्त एवं वैभवशाली भाषा की परंपरा भारत को मिली है । इस भाषा की क्षमता को विश्व भी समझता है; इसलिए वैश्वीकरण के नये दौर में आज बाजार हिन्दी की ताकत को समझ रहा है । विभिन्न चैनल, बड़ी-बड़ी कंपनियों के विज्ञापन हिन्दी में दिखाई दे रहे हैं । हिन्दी ने उस भ्रम को तोड़ दिया है कि वह विज्ञान और आधुनिक तकनीक की भाषा नहीं बन सकती । हिन्दी हर आधुनिक तकनीक अपने में उतारने के लिए बेसब्र है । विश्व के किसी-न -किसी कोने में लगातार हिन्दी वायुमंडल को भर रही है । भारत सोता है तो त्रिनिदाद, सूरीनाम, मॉरीशस, अमेरिका, कनाडा जैसे देश जागते हैं, और वहाँ हिन्दी के शब्द वातावरण में गूँजते रहते हैं । विश्व के सौ सवा सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही हो तो ऐसा कौन-सा क्षण होगा कि जब हिन्दी उच्चारित न हो रही है । विश्व हिन्दी की ओर आशाभरी दृष्टि से देख रहा है । विश्व यदि हिन्दी को उसकी संस्कृति, धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य को समझना चाहता है तो यह हिन्दी के लिए गौरव की बात है । किन्तु यह समस्त विश्वविद्यालय केवल भारत के सुलभ बाजार में प्रवेश के लिए हिन्दी की ओर आशा से देख रहे है तो यह खतरे की घंटी का अनहित नाद है ।

कुछ लोगों को घर में नहीं बाहर ज्यादा सम्मान मिलता है । लेकिन घर में अधिक सम्मानित व्यक्ति ही बाहर अधिक सम्मानित हो सकता है । वैसे ही जो भाषा हृदय से स्वीकार की जाए, वह दीर्घकाल और आजीवन होती है । बहरहाल, विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं-हिन्दी, मंदारिन और अंग्रेजी का नाम लिया जाता है । विश्व के मानचित्र पर अगर हिन्दी की तलाश की जाए तो कई तथ्य सामने आते हैं कि वह विश्व के लगभग 73 देशों में स्थान बना चुकी है । हिन्दी के वैश्विक सफर का शुभारंभ सन 1975 में नागपुर, भारत में आयोजित पहले विश्व हिन्दी सम्मेलन से हुआ था । विशेष, अंतर्राष्ट्रीय मंच पर हिन्दी का गौरव बढ़ाने का सबसे पहला प्रयास प्रधानमंत्री परम श्रद्धेय श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विदेश मंत्री के रूप में संयुक्त राष्ट्र में 1977 में हिन्दी में भाषण देकर किया था । वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 2016 में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में ओजपूर्व भाषण देकर अटलजी के प्रयास को आगे बढ़ाते हुए राष्ट्रीय स्वाभिमान का परिचय दिया है । वैसे विदेशों में प्रवासी भारतीयों ने भी हिन्दी भाषा एवं संस्कृति को जीवंत रखा है । भारत से बाहर जिन देशों में हिन्दी का प्रयोग बोलने, लिखने, पढ़ने तथा अध्ययन और अध्यापन की दृष्टि से होता है उन्हें डॉ. परमानंद पांचाल ने पाँच वर्गों में विभक्त किया है-

1. जहाँ प्रवासी भारतीय विपुल संख्या में रहते हैं- जैसे मॉरिशस, फीजी, सूरीनाम, गयाना, ट्रिनीडाड एवं टोबैगो, दक्षिणी अफ्रीका तथा हालैण्ड आदि ।

2. भारत के पड़ोसी देश जैसे- पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, म्याँमार, श्रीलंका और मालदीव आदि ।

3. भारतीय संस्कृति से प्रभावित दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देश,जैसे इण्डोनेशिया, मलेशिया, थाइलैण्ड और चीन, मंगोलिया, कम्बोडिया, कोरिया तथा जापान आदि ।

4. अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाड़ा और यूरोप के देश, जहाँ हिन्दी को विश्व की आधुनिक भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है ।

5. अरब और अन्य इस्लामी देश, जैसे संयुक्त अरब अमीरात, दुबई, अफगानिस्तान, कत्तर, मिस्त्र, उजबेकिस्तान कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि

डॉ. पांचाल द्वारा प्रस्तुत तथ्य एवं आंकड़ों का सार-संक्षेप निम्नवत है-

प्रवासी भारतीयों की आबादी वाले देश मॉरिशस की बात करें तो हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय रूप प्रदान करने में मॉरिशस की महत्वपूर्ण

भूमिका रही है । यहाँ के प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकारों में भी अभिमन्यु अनत, जघनारायण राम वासुदेश, विष्णु दयाल, रामदेव धुरन्धर, शम्भू मधुकर प्रभृति लेखक और कवि उल्लेखनीय हैं जो हिन्दी में अपनी मौलिक रचनाओं के द्वारा हिन्दी की अभिवृद्धि में संलग्न हैं । यहाँ से 'बसन्त' जैसी पत्रिका निरन्तर प्रकाशित हो रही है । यहाँ विद्यालयों में 25 हजार छात्र प्रतिवर्ष हिन्दी का अध्ययन करते हैं । वास्तव में यह आंकड़ा हिन्दी गौरव के लिए महत्त्वपूर्ण है । फीजी में 70 प्रतिशत से अधिक लोग हिन्दी बोलते हैं । यहाँ योगेंद्र प्रसाद चौधरी, हरनाम सिंह प्रभृति जैसे साहित्यकार हिन्दी में मौलिक रचनाएँ कर रहे हैं । सूरीनाम में भारतीय मूल के लोगों की जनसंख्या 40 प्रतिशत है । सूरीनाम के सम्बन्ध में तथ्य प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं- यहाँ भारतीय मूल के लोगों की जनसंख्या 40 प्रतिशत है । यहाँ की स्थानीय हिन्दी का रूप 'सरनामी हिन्दी' के नाम से विकसित हुआ है। 2003 में सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरीनाम में आयोजित हुआ था । त्रिनिडाड एवं टोबेगो में भारतवंशियों की आबादी 45 प्रतिशत से अधिक है । 1996 का पाँचवा विश्व हिन्दी सम्मेलन यहाँ आयोजित हुआ था । गुयाना के कुल जनसंख्या के 51 प्रतिशत लोग भारतीय मूल के हैं । यहाँ के विश्वविद्यालय में बी.ए. के स्तर पर हिन्दी के अध्ययन की व्यवस्था है । पड़ोसी देश पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू है । फिर भी यहाँ के एक विश्वविद्यालय में तथा स्कूल ऑफ मॉडर्न लैंग्वेजेज में हिन्दी के अध्ययन और अध्यापन की व्यवस्था है । श्रीलंका और नेपाल में भी विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी पढ़ाई जाती है । काठमांडू के त्रिभुवन विश्वविद्यालय में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी का अध्ययन होता है । 1995 से बांग्लादेश के ढाका विश्वविद्यालय में हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था की गई है । म्यांनमार (म्याँमार) में हिन्दी का प्रचार-प्रसार पहले से ही है । डॉ. परमानंद पांचाल के अनुसार दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में हजारों वर्षों से भारतीय संस्कृति का प्रवेश रहा है । विशेष थाईलैण्ड में काफी संख्या में भारतीय प्रवासी है । यहाँ हिन्दी जाननेवालों की संख्या लगभग एक लाख है । सिंगापुर, मलेशिया, इंण्डोनेशिया में भी हिन्दी जाननेवालों की संख्या बहुत मात्रा में है । चीन के पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग है । पेइचिंग रेडियो में हिन्दी के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं । जापान के क्योतो और ओसाका विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाई जाती है । यहाँ 'ज्वालामुखी' नाम से हिन्दी में एक वार्षिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है । यहाँ डॉ. दोई ने गोदान का जापानी भाषा में अनुवाद किया है । वे आगे कहते हैं कि यूरोप और अमेरिका के देशों में हिन्दी के अध्ययन में रूचि बढ़ी है । गिलक्राइस्ट, मौनियर विलियम्स, ग्रिथर्सन जैसे कई विद्वानों ने हिन्दी-कोश, व्याकरण और भाषिक विवेचन के ग्रंथ लिखे । आज भीमेक्रेगर और स्पर्ट स्नेल जैसे विद्वान हिन्दी साहित्य सृजन में योदगान दे रहे हैं । यहाँ लंदन, केम्ब्रिज तथा यार्वह्र विश्वविद्यालय में हिन्दी पठन-पाठन की व्यवस्था है । यहाँ से प्रवासिनी, अमरदीप, पूरवाई जैसी कई पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है । बी.बी.सी से निरन्तर हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित होते हैं । फ्रांस, पेरिस, बेल्जियम, इटली, नार्वे, डेनमार्क, स्विरजरलैंण्ड, हॉलैड विश्वविद्यालय में भी हिन्दी पठन-पाठन की व्यवस्था है । पोलैण्ड के वासी विश्वविद्यालय में हिन्दी पढने-पढ़ाने की व्यवस्था है । प्रो. वृस्की हिन्दी के प्रख्यात विद्वान हैं । अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। ऑस्ट्रेलिया के दो विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी पढाई जाती है । जहाँ तक रूस का प्रश्न है, वहाँ हिन्दी पुस्तकों का जितना अनुवाद हुआ है, उतना शायद ही विश्व की किसी भाषा में हुआ हो । वारान्तिकोव ने तुलसी के रामचरितमानस का अनुवाद किया था । अरब और अन्य इस्लामी देशों में भी हिन्दी लोकप्रिय हो रही है । तुर्की, ईराक, संयुक्त अरब अमीरात, दुबई आदि में हिन्दी सर्वत्र बोली और समझी जाती है किन्तु लिखी-पढ़ी नहीं जाती ।

डॉ. परमानंद पांचाल द्वारा प्रस्तुत आंकड़े एवं तथ्यपरक जानकारी से विश्व पटल पर हिन्दी भाषा एवं साहित्य की महत्त्वपूर्ण जानकारी सामने आती है । हिन्दी विश्व के विराट फलक पर अपने अस्तित्व को आकार दे रही है । डॉ. जयंतीप्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध 2005 के अध्ययन के आधार पर हिन्दी को विश्व की सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा कहा था । उन्होंने तथ्य प्रस्तुत करते हुए कहा था कि विश्व में हिन्दी जाननेवालों की संख्या 1,02,25,10,352 है जबकि चीनी अर्थात मंदारिन जाननेवालों की संख्या 90,04,06,614 है । इस आधार पर हिन्दी विश्व की सर्वाधिक समझी जानेवाली भाषा है । इस दृष्टि से जो एक महत्त्वपूर्ण कार्य शेष है वह है- संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान करना । जो श्रीगणेश तत्कालीन विदेश मंत्री अटलबिहारी जी ने 1978 में किया था वह निरंतर होता रहे और राजनीतिक तौर पर गंभीरतापूर्वक प्रयास किए जाए । हिन्दी को केवल भाषा ही नहीं समझना होगा वह हमारी अस्मिता है, हमारी पहचान है और राष्ट्रीयता भी है । इसके अलावा, वह हमारे पूर्वजों द्वारा निर्मित संस्कृति की संवाहिका भी है । कभी सुभाषचंद्र बोस ने 'जय हिंद' का नारा दिया था । हम इस नारे को 'जय हिन्दी' बना दें।

विश्व पटल पर हिन्दी की समस्याएँ :-

भले ही हिन्दी ने विश्व के विराट फलक पर अपनी मौजूदगी दर्शायी हो लेकिन विश्व में वह उस दृष्टि से स्थापित नहीं हो सकी है जैसे अपेक्षित थी । भारतीय संविधान सभा ने जब हिन्दी को राजभाषा घोषित किया तब संसार के कई विश्वविद्यालय ने हिन्दी को ससम्मान स्वीकार किया । किन्तु शनैःशनै भारत सरकार के राजभाषा संबंधी नियम और नीतियां शिथिल होती गई जिसका असर अन्य देशों पर भी दृष्टिगोचर हुआ । ऐसे में हिन्दी को वैश्विक स्तर पर मजबूती प्रदान करने हेतु विशेष राजनीतिक पहल की आवश्यकता है। मॉरीशस, फिजी, सूरीमान तथा अन्य देशों में बोली जानेवाली परिवर्तित हिन्दी को देखकर उसके रूप को स्थिर एवं मानक बनाने के लिए पुरजोर कोशिश की आवश्यकता है । तभी

उसके वैश्विक स्वरूप प्राप्ति में सुगमता होगी । साथ ही इसकी साहित्यिक आत्मा को सुरक्षित रखते हुए हिन्दी शिक्षण को रोजगाराभिमुख बनाना परम आवश्यक है तभी वैश्विक युवा वर्ग इसकी ओर आकर्षित होगा; उसका वनवास खत्म होगा । इस दिशा में कार्यरत संस्थाएँ जो हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर रही हैं ; उन्हें समुचित प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहयोग नहीं मिल रहा है । यह भी कोई मंगलमय संकेत नहीं है । भारतीय दूतावासों में पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा हिन्दी को महत्व न देना भी हिन्दी के वैश्विक स्वरूपाकार में रोड़ा है । विश्व हिन्दी सम्मेलनों की औपचारिकता, निश्चित एजेंडे का अभाव एवं मात्र भ्रमण का दृष्टिकोण भी इसके लिए मारक है । संयुक्त राष्ट्र संघ में इसको शामिल करने में उदासीनता भी एक अन्य महत्वपूर्ण कारक कहा जा सकता है । वर्तमान में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय तथा महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय दोनों हिन्दी के प्रचार-प्रसार में संलग्न है तथा विभिन्न उपक्रम एवं परियोजना का क्रियान्वयन कर रहे हैं । यह पहल हिन्दी के लिए शुभ संकेत कही जा सकती है । यह पहलकदमी निश्चय ही हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य के लिए फलदायी है । अंतत: आशा करते हैं कि ऐसी कुछ संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालय हिन्दी को भारत के शेष स्थानों में पहुँचाकर स्थापित करेंगे और फिर विश्वोन्मुख होकर भारत को विश्व गुरू की भाँति विश्व भाषा के रूप में गौरवान्वित करने में अहम योगदान देंगे । इस आशा के साथ ।

-भागीनाथ वाकले
रिव्हरडेल हाई स्कूल, औरंगाबाद, महाराष्ट्र

पृष्ठ संख्या 21 का शेष

ग्रंथ इस काल में यादवों की राज्य सत्ता थे, जिन्होंने मराठी भाषा को आश्रय प्रदान किया।

बारहवीं शताब्दी में कवि मुकुंदराज तथा संतज्ञानेश्वर हुए। इन कवियों ने ही मराठी साहित्य की आधारशिला रखी। इसी लिए इस युग को ज्ञानेश्वर युग भी कहा जाता है। मराठी भाषा का अत्यंत उज्ज्वल स्वरूप इसी काल में दिखाई देता है। वैदिक, संस्कृत आदि भाषाओ में परिणत होते-होते मराठी अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त हुई थी। इस समय ना तो संस्कृत का उस पर वर्चस्व था, ना ही फारसी भाषा ने उसे स्पर्श किया था और ना ही फिरंगी भाषा से संपर्क हुआ था। इसके पश्चात यादवों को परास्त कर हुसैनगंगो बहमनी ने दक्षिण में अपने राज्य की स्थापना की। बहमनी शासक फारसी के पक्षधर होने के कारण मराठी पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस प्रकार शुद्ध मराठी धीरे-धीरे फारसीमय होने लगी। संतएकनाथ की रचनाओं में मराठी पर फारसी का प्रभाव इस बात का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त है।

इसके बाद शिवाजी महाराज के समय में जो राज्य क्रांति हुई उस समय मराठी भाषा की अस्मिता जाग्रत करने और उसको पुन: उसका स्वरूप दिलाने के लिए प्रयत्न प्रारंभ हुआ। आध्यात्म रूपी अनसुलझे रहस्यों को मराठी भाषा में सुलझाने की जो परंपरा मुकुंदराज, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव इत्यादि कवियों ने प्रारंभ की थी उसे संतराम दास और तुकाराम आदि संत कवियों ने आगे बढ़ाया। अत: इस काल को तुकाराम युग भी कहा जाता है। इस प्रकार शिवाजी के काल में मराठी भाषा व साहित्य को संवर्धन एवं राज्याश्रय प्राप्त हुआ। मराठी साहित्य पर फारसी भाषा का जो प्रभाव शिवाजी काल में कम हुआ था। वह पेशवा काल तक आते-आते और बढ़ गया। फलस्वरूप फारसी मिश्रित मराठी का प्रयोग होने लगा। इसी काल में वामन पंडित, कपीश्वर, निरंजन माधव, श्रीधर, महीपति आदि कवियों ने मराठी साहित्य को सुसंस्कृत रूप प्रदान किया। इनकी भाषा को पंडितीय भाषा कहा जा सकता है, परंतु यह भाषा जन सामान्य की समझ से परे थी। पेशवा काल का अवसान होते-होते मराठी साहित्य में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। वर्तमान कालीन जो शिष्ट मराठी भाषा है, उसका स्वरूप अंग्रेजी राज्य में ही तय होने लगा था। यह ब्रिटिश काल व अर्वाचीन युग कहलाया।

इस काल में जो शिक्षण संस्थाएं स्थापित हुई और उनके माध्यम से जिन पुस्तकों का प्रकाशन हुआ, वे शास्त्री एवं पंडितों द्वारा लिखी गई थीं। अत: आधुनिक काल तक आते-आते मराठी भाषा व साहित्य को सुसंस्कृत एवं परिपक्व स्वरूप प्राप्त हुआ। पंडित विष्णु शास्त्री चिपकूणकर के लेखों के माध्यम से मराठी साहित्य अपने परिमार्जित रूप में निखर कर उजागर हुआ। इस काल में मराठी साहित्य नवलेखन के रूप में प्रसारित हुआ। अत: मराठी भाषा अनेक युगों से होते हुए अपना सुसंस्कृत स्वरूप प्राप्त करने में सक्षम रही। मराठी भाषा व मराठी साहित्य आधुनिक काल में उत्कृष्टता के शिखर पर विद्यमान हो गया। मराठी भाषा आज सभी भारतीय भाषाओं में अपना विशेष स्थान बनाए हुए है।

-डॉ विनीता शुक्ला
पीएचडी (हिन्दी)
ब्लॉगर, लेखिका, कवयित्री

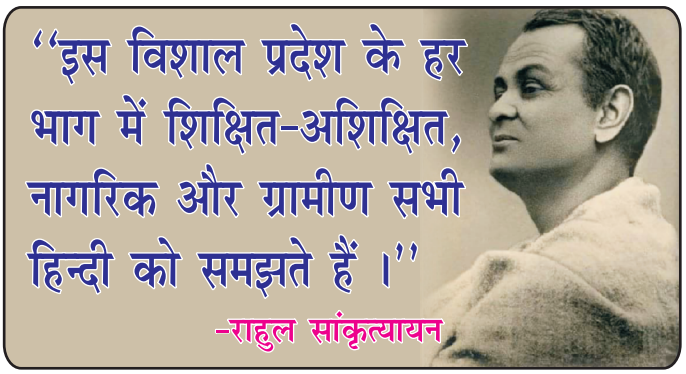

युवा मत

संस्कृत भाषा का संरक्षण जरूरी

शिवांशु राय

मनुष्य की उत्पत्ति के समय से आपसी अंत:करण, सामाजिक सम्बन्धों और विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम भाषा रही हैं। प्रारम्भ में इसका मूल स्वरूप सांकेतिक था जिसका क्रमश: विकसित और आधुनिक स्वरूप आज हमें विविध लिखित और मौखिक भाषाओं के रूप में दिख रहा हैं। भौगोलिक अवधारणा की उत्पत्ति और आधुनिक समाज का निर्माण हो जाने पर भाषा उस समाज और क्षेत्रीयता की पहचान बन गयी इसी प्रकार आज भी आधुनिक समय में किसी भी राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता और उसकी विविधता की पहचान वहां की मातृभाषा, प्रचलित बोलियां आदि से होती हैं। भारत जैसे देश मे कहा जाता है कि यहां चंद मिल की दूरी पर भाषाएं और बोलियां बदल जाती हैं। भाषाई विविधता की प्रचुरता होने के कारण ही यहां अनेक प्रकार कि भाषाएं और बोलियां यहां की क्षेत्रीय और भूगौलिक पहचान की प्रतीक हैं। गृह मंत्रालय के अंतर्गत महापंजीयक और जनगणना आयुक्त के अनुसार देश मे 19,569 भाषाएं और बोलियां बतौर मातृभाषा के रूप में बोली जाती हैं हालांकि इतनी भाषाओं के बोलने वालों की संख्या काफी कम है और मात्र 270 ही ऐसी भाषाएं है जिनके भाषियों की संख्या 10 हजार से ऊपर हैं।ऐसे में यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता में विविधता का एक कारण भाषा भी हैं।

अगर हम अतीत की बात करें तो आज से तीन हजार वर्ष पूर्व हमारी मातृभाषा संस्कृत हुआ करती थीं।उस वक्त संस्कृत भाषा का व्यापक स्तर पर प्रभाव और प्रसार हुआ करता था। उस काल मे हिन्दू धर्म से सम्बंधित सभी ग्रन्थ, पुराण, वेद आदि की रचनाएं संस्कृत भाषा में हुई। ईसा से 500 वर्ष पूर्व पाणिनि ने 'अष्टध्यायी' नामक ग्रन्थ की रचना की, जो किसी भी भाषा का सम्भवत: पहला विस्तृत व्याकरण था। इसके बारे में लेनिनग्राड के प्रोफेसर टी. शेरवात्सकी कहते हैं कि यह व्याकरण मानव मस्तिष्क की सबसे बड़ी रचनाओं में से एक हैं। वैदिक काल मे भी संस्कृत भाषा की लोकप्रियता थी। इसका प्रमाण हमे विश्व की सबसे पुरानी पुस्तक 'ऋग्वेद' से पता चलता है जो पूर्णत: संस्कृत में ही लिखी गयी हैं। पतंजलि का 'महाभाष्य' और वाल्मीकि के रामायण जैसी महान कृतियों की रचना भी संस्कृत भाषा में हुई हैं। इसके बाद हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध धर्म के ग्रन्थ विशेषकर 'महायान' और जैन धर्म की अधिकतर रचनाएं संस्कृत भाषा में रची गयी है। संस्कृत भाषा को इसीलिए देवभाषा और सुरभारती भी कहा जाता है जो वास्तव में हिन्दू धर्मों की पवित्र और भारतीयों की मूल भाषा हैं। संस्कृत के विकास की दृष्टि से तीन काल उभर कर सामने आते हैं, प्रथम आदिकाल जिसमें वेदसंहिताओं, मध्यकाल जिसमे काव्यों, वेदांगग्रंथों और दर्शनसूत्रों और परवर्ती काल जिसमे काव्य, नाटक, साहित्य शास्त्र आदि का विकास हुआ जो आज तक निरन्तर जारी है। अत: संस्कृत भाषा का यह विकसित चरण काफी गौरवशाली रहा हैं इसी कारण इसे सबसे पवित्र, ललित और वैज्ञानिक भाषा माना जाता है। संस्कृत के साहित्य में गहनता, व्यापकता और नवीनता होने के कारण इसे भारत की अमूल्य चिंतन-मनन, प्रतिभा, कौशल, रचनात्मकता, सृजनात्मकता आदि का धरोहर कहा जाता हैं। इसीलिए तो यूनेस्को ने सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य साहित्यिक धरोहर मे संस्कृत वैदिक जाप को जोड़ा हैं।

वैसे तो प्राचीन समय में भारत में दो लिपियां थी, ब्राह्मी लिपि जो बाएं से दाएं लिखी जाती थी और खरोष्ठी लिपि जो दाएं से बाएं लिखी जाती थी ,इसमे से संस्कृत की लिपि ब्राह्मी है। इस प्रकार ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषा का दक्षिण की तमिल और तेलगु जैसी भाषाएं, वर्णमालाओं और नाना प्रकार की आधुनिक भाषाओं को मूल उत्पत्ति का स्रोत माना जाता है, अत: हम कह सकते हैं कि संस्कृत अनेक भाषाओं की जननी हैं। वर्तमान समय में संस्कृत की महत्ता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि विश्व के कई देश संस्कृत में रचित भारत की प्राचीन वेदग्रन्थों, पुराणों, कृतियों आदि को अध्ययन, शोध आदि करने के साथ-साथ अनुसरण भी कर रहे हैं। यह जानकर हैरानी होगी कि अकेले जर्मनी के 14 विश्वविद्यालयों में संस्कृत की भारी मांग के चलते इस भाषा की शिक्षा उपलब्ध कराई जा रही है, वही प्रगतिशील देश अमेरिका के 'अमेरिकी कांग्रेस पुस्तकालय' में तकरीबन 67 सौ संस्कृत भाषा के हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो वहां के संस्कृत भाषा के अध्येता बड़े रुचि से अध्ययन कर रहे हैं। आधुनिकता के इस दौर में विश्व समुदाय का यह प्रेम वास्तव में सराहनीय हैं।

बात अपने देश की करे तो समस्त भारतीय भाषाओं की जननी होने के बाद भी संस्कृत भाषा आधुनिक युग में लुप्तप्राय सी हो गयी हैं। संस्कृत भाषा के ऊपर अन्य भाषाओं के हावी होने की प्रक्रिया अचानक नहीं हुई। अगर हम गहनता से विश्लेषण करें तो मध्यकालीन भारतीय इतिहास में जब से अरबों का भारत के ऊपर अधिपत्य स्थापित हुआ तब से ही व्यापक स्तर पर संस्कृत भाषा का क्षरण होता चला गया। विदेशी आक्रमणकारियों में मूलत: अरब और बाद में मुगल शासक थे जिनका भारत पर काफी लंबे समय तक अधिपत्य रहा हैं। इस काल मे जबरन धर्मपरिवर्तन, हिन्दू धर्म के ऊपर अत्याचार, भारतीय लोक संस्कृति की अवहेलना एवं मुख्यत: भारतीय भाषाओं के ऊपर अपनी भाषाओं का थोपना था। यह सत्य है कि मध्यकाल में संस्कृत भाषा का नवीनतम विकास अवरुद्ध हो गया था और यह आधुनिक काल के अंत तक आते-आते क्षरण की ओर उन्मुख हो चली थी। यूरोपीयन के आक्रमण के बाद संस्कृत और

अन्य भारतीय भाषाओं के ऊपर अंग्रेजी भाषा को यूरोपीय शासकों ने थोपना शुरू कर दिया था। अंतत: संस्कृत भाषा न तो प्रचलित रूप से आम बोल चाल कि भाषा थी ना ही यह राजकीय भाषा इसलिए यह सिर्फ पंडितों, धार्मिक कर्मकांडों और पूजा-पाठ की भाषा तक सीमित रह गयी यानी इसका व्यापक आकार सिकुड़ते-सिकुड़ते एक सीमित दायरे तक सिमट गया।

आजादी के बाद भारत सरकार ने संस्कृत भाषा के संरक्षण, विविध आयामों पर विचार, चर्चा के लिए 1956 में प्रोफेसर सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में प्रथम संस्कृत आयोग का गठन किया था।इसके बाद 58 साल तक न तो कोई नया आयोग और न ही नई नीतियां बनाई गई। यूपीए-2 की सरकार ने चुनाव से पहले ही पद्म भूषण सत्यव्रत शास्त्री के अध्यक्षता में मौजूदा हालात के अनुसार मूल्यांकन और समीक्षा कर संस्कृत को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जोड़ने के लिए द्वितीय संस्कृत आयोग का गठन किया । इस आयोग ने 6वीं से 10वीं तक 4 भाषा के फार्मूले को स्कूली स्तर पर लागू करने का सुझाव दिया ।वही सभी उच्च स्तरीय वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी संस्थानों में संस्कृत भाषा के पेपर को अनिवार्य करने को कहा था जो वास्तव में लागू नहीं हुआ।जिस प्रकार नई शिक्षा नीति के मसौदे में तीन भाषा फॉर्मूले के अंतर्गत हिन्दी भाषा को अनिवार्य बनाने पर दक्षिण राज्यों समेत अन्य जगह पर हो-हल्ला हुआ फलत: सरकार को हिन्दी अनिवार्य न करने का आश्वासन देना पड़ा ठीक उसी प्रकार सीबीएसई ने 2014 में 7 अगस्त से लेकर 13 अगस्त तक सभी स्कूलों में संस्कृत सप्ताह मनाने और संस्कृत भाषा से बच्चों को रूबरू कराने को कहा था जिस पर काफी विवाद, विरोध और हो-हल्ला हुआ, कई राजनीतिक दलों ने इसे कट्टरपंथ तक कह डाला। इससे यह पता चलता है कि हमारा वर्तमान समाज इस अनुरूप ढल चुका है कि हम सुधारात्मक प्रक्रिया में नहीं बल्कि निजी हित और क्षणिक लाभ में विश्वास करने लगे हैं,सामुदायिक सोच का दायरा सिमट चुका है। आज की वास्तविक स्थिति यह है कि वैश्वीकरण के आधुनिक प्रगतिशील समय में बाजारवाद हम पर हावी हो चुका हैं, जो हमें संरक्षण के स्थान पर उपभोग की तवज्जो देता हैं। इसी कारण हम अपनी गौरवशाली परम्परागत चीजों को छोड़कर पश्चिमीकरण की ओर उन्मुख हैं। जाहिर सी बात है आधुनिक समय में यहां अवसर हैं। यही मूल वजह है कि वर्तमान में हमारी परम्परागत भाषाओं के ऊपर अन्य भाषाएं हावी होती जा रही हैं और लोग तव्वजो भी दे रहे हैं। वर्तमान समय मे संस्कृत भाषा के प्रति भारतीय छात्रों के मन में हीन भावना और 'अनुपयोगी' भाषा की छवि बन चुका हैं। बेहतर कैरियर और अवसर के अभाव की भावना के कारण वे इस भाषा से विमुख होते जा रहे हैं। स्कूलों में भी संस्कृत भाषा को पढ़ाने पर बिल्कुल भी पहल नहीं की जा रही है। आज देश के 14 प्रमुख संस्कृत विश्वविद्यालयों की हालत बदतर है। उनमें फण्ड की कमी के साथ-साथ आवश्यक सुविधाएं, अध्यापक और छात्रों के दाखिला का अभाव है।

इन सारी कमियों के पीछे मूलभूत कारण यह है कि आजादी के बाद इतने सालों में सरकार द्वारा संस्कृत को प्रोत्साहन प्रदान न करना, संस्कृत को रोजगार उन्मुख बनाने के लिए ढांचागत विकास और नीतियां न बनाना ,आधुनिक शिक्षा प्रणाली से संस्कृत भाषा को न जोड़ पाना, विश्वविद्यालयों में फण्ड, मूलभूत सुविधाएं और प्रोफेसरों का अभाव होना, प्राथमिक स्तर पर स्कूली शिक्षा में संस्कृत को अध्ययन की भाषा के लिए बढ़ावा न देना और इंग्लिश मीडियम के स्कूलों में भी संस्कृत को अनिवार्य न बनाना । ये मुख्यत: प्रथम दृष्टया कारक उभर कर सामने आते हैं।

हमें समझना चाहिए कि संस्कृत भाषा पूर्णत: पवित्र, ललित और वैज्ञानिक भाषा है। यह भाषा ही नही बल्कि विचार, संस्कृति और भारतीय संस्कार है जिसमे विश्व-कल्याण, शांति-सहयोग, एकता, समरसता, बंधुत्व और वसुदैव कुटुम्बकम की भावना निहित हैं। संस्कृत के बारे में कठिन और मृत भाषा की धारणा बिल्कुल मिथ्या है। इसीलिए सरकार को संस्कृत के संरक्षण, व्यापक स्वरूप प्रदान करने, रोजगार एवम अवसर के अनुकूल बनाने के लिए नवीन नीतियां, जागरूकता, विद्यार्थियों को प्रोत्साहन और बेहतर कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है जिससे लोगों का ध्यान संस्कृत की तरफ जाए और लोग अध्ययन के प्रति उन्मुख हो। जिस प्रकार लुप्तप्राय भाषा हिब्रू को यहूदियों ने पुन: प्रचलित बना दिया उसी प्रकार हमे भी संकल्पित मन से अपनी 'देवभाषा' के संरक्षण के लिए आगे आना होगा। हमें बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के इन बातों को नहीं भूलना चाहिए जिन्होंने कहा था कि संस्कृत ही पूरे भारत को भाषाई एकता में बांध सकती है।

-शिवांशु राय
गाँव व पोस्ट-हथिनी, जिला-मउ-275102 (उ.प्र.)

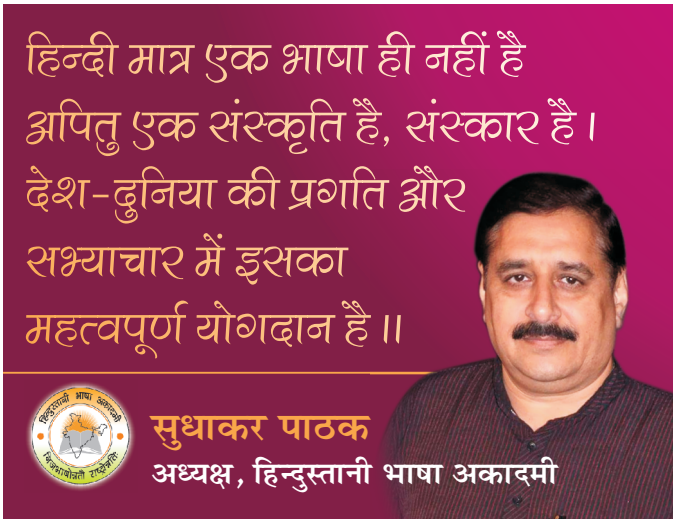

युवा मत

क्या सचमुच हिन्दी बढ़ रही है ?

नन्दिनी सोनी

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥

आधुनिक हिन्दी साहित्य के पितामह कहे जाने वाले भारतेन्दु हरिश्चंद्र के इस दोहे का अर्थ है कि अपनी भाषा से ही उन्नति संभव है । सारी उन्नति का मूल आधार यही है । विभिन्न प्रकार की कलाएं, शिक्षा और ज्ञान सभी देशों से भले ही लें, परन्तु उनका प्रचार मातृभाषा में ही करना चाहिए । ये दोहा भारत की राजभाषा हिन्दी पर भी हू-ब-हू लागू होता है । हिन्दी भारत की मातृभाषा के रूप में विद्यमान है । केंद्रीय स्तर पर दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है जो विश्व की एक प्रमुख भाषा है । हिन्दी हिंदुस्तानी भाषा का एक मानकीकृत रूप है, जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम है। यह संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा है । यह सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है । एथनोलॉग (विश्व की भाषाओं की सूची है जिसका प्रयोग भाषा विज्ञान में अक्सर किया जाता है) के अनुसार हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है । विश्व आर्थिक मंच गणना अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है । इसकी मानकीकृत रूप को मानक हिन्दी कहा जाता है ।

नामोत्पत्ति-हिन्दी शब्द का संबंध संस्कृत शब्द 'सिंधु' से माना जाता है । बोलने का स्थान-भारत, नेपाल, दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान आदि । भाषा परिवार-भारोपीय भाषा परिवार

(1) हिन्दी ईरानी (2) हिन्दी -आर्य (3) संस्कृत (4) केंद्रीय क्षेत्र (हिन्दी) (5) पश्चिमी हिन्दी (6) हिन्दुस्तानी (7) खड़ीबोली

(8) हिन्दी

लिपि-देवनागरी

राजभाषा मान्यता-केंद्रीय हिन्दी निदेशालय

भिन्न-भिन्न भाषाओं के मध्य परस्पर विचार-विनिमय का माध्यम बनने वाली भाषा को संपर्क भाषा कहा जाता है । भारत वर्ष में बोली और समझी जाने वाली हिन्दी देश की संपर्क भाषा है । यह राजभाषा भी है तथा सारे देश को जोड़ने वाली संपर्क भाषा भी । पूर्वोत्तर राज्य भारत का अहिन्दी भाषी क्षेत्र है । यहाँ असमिया के साथ ही बंगाली, नेपाली, मणिपुरी, अंग्रेजी, खासी, गारो, निशी, नागामीज, मिजो, कॉकबराक, लेप्चा, और भूटिया आदि भाषाएँ बोली जाती है । इन 8 राज्यों में 200 से अधिक भाषाएं एवं बोलियाँ प्रचलित हैं । यहाँ हजारों वर्षों से असमिया भाषा राज्य की संपर्क भाषा रही है । पूर्वोत्तर भारत की भाषाओं में से केवल असमिया, बोरो और मणिपुरी भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित हैं । सभी राज्यों में हिन्दी भाषा का प्रयोग अधिकांश प्रवासी हिन्दी भाषियों द्वारा आपस में किया जाता है । पूर्वोत्तर में हिन्दी का औपचारिक रूप से प्रवेश 1974 ई. में हुआ, जब महात्मा गांधी 'अखिल भारतीय हरि जनसभा' की स्थापना हेतु असम में आए । पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी की स्थिति दिनों-दिन सबल होती जा रही है और बढ़ रही है ।

हिन्दी का प्रचार-प्रसार, उसकी लोकप्रियता एवं व्यवहारिकता टी.वी. धारावाहिक, विज्ञापन, सिनेमा, आकाशवाणी, पत्रकारिता, विद्यालय, महाविद्यालय तथा उच्च शिक्षा में हिन्दी भाषा की उपयोगिता बढ़ रही है । सन् 1998 के पूर्व मातृभाषाओं की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के आंकड़ों में हिन्दी को तीसरा स्थान दिया गया था । यूनेस्को द्वारा सन् 1998 में यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर भारत सरकार के केंद्रीय हिन्दी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रो. महावीर सरन जैन द्वारा प्रस्तुत की गई विस्तृत रिपोर्ट के अनुसार विश्वस्तर पर यह स्वीकृति है कि मातृभाषाओं की संख्या की दृष्टि से विश्व की भाषाओं में चीनी भाषा के बाद हिन्दी का दूसरा स्थान है । अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा ज्यादा है किंतु मातृभाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है । बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ । हिन्दी एशिया के व्यापारिक जगत को धीरे-धीरे अपना स्वरूप बिम्बित कर भविष्य की अग्रसर भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही है । वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार के क्षेत्र में हिन्दी की मांग जिस तेजी से बढ़ी है वैसी किसी और भाषा में नहीं हुई ।

विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में शोध स्तर तक हिन्दी के अध्ययन- अध्यापन की व्यवस्था है । विदेशों में 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ लगभग नियमित रूप से हिन्दी भाषा में प्रकाशित हो रही है । यूएई के एफ. एम सहित अनेक देश हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डायचेवेले, जापान के एन.एच.के वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल के प्रसारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है । दिसम्बर 2016 में विश्व आर्थिक मंच ने 10 सर्वाधिक शक्तिशाली भाषाओं की एक सूची जारी की, जिसमें हिन्दी भी एक है । इसी प्रकार 'लैंगवेजेज' नामक साइट ने दस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिया है । के-इंटरनेशनल ने वर्ष 2017 के लिए सीखने योग्य सर्वाधिक उपयुक्त 9 भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिया ।

हिन्दी को एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से 11 फरवरी 2008 को विश्व हिन्दी

सचिवालय की स्थापना की गई । संयुक्त राष्ट्र रेडियो ने अपना प्रसारण हिन्दी में भी करना आरंभ किया है । हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के लिए सरकार प्रयास कर रही है । अगस्त 2018 से संयुक्त राष्ट्र ने सप्ताहिक हिन्दी समाचार बुलेटिन आरंभ किया है । कम्प्यूटर और इंटरनेट में पिछले वर्ष में विश्व में सूचना क्रांति लाई । आज कोई भी भाषा कम्प्यूटर तथा कम्प्यूटर दृश्य अन्य उपकरणों से दूर रहकर लोगों से भी जुड़ सकता है । कम्प्यूटर के विकास के प्रारंभ में अंग्रेजी को छोड़कर विश्व की अन्य भाषाओं के कम्प्यूटर पर प्रयोग की दिशा में बहुत कम ध्यान दिया गया है किंतु यूनिकोड के पदार्पण से परिस्थिती बहुत तेजी से बदली । 19 अगस्त 2009 में गूगल ने कहा- 'हर 5 वर्षों में हिन्दी की सामग्री में 94% बढ़ोतरी हो रही है।' हिन्दी की इंटरनेट पर उपस्थिति अच्छी है । गूगल जैसे सर्च इंजन हिन्दी को प्राथमिक भाषा के रूप में जानते हैं । यूथवर्क की सर्वेक्षण रिपोर्ट ने फरवरी 2018 में कहा- इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी ने भारतीय उपभोक्ताओं के बीच अंग्रेजी को पछाड़ दिया है । जैसे-जैसे इंटरनेट का फैलाव छोटे-छोटे शहरों की ओर बढ़ेगा, हिन्दी और भारतीय भाषाओं की दुनिया का विस्तार होता जाएगा । इस समय हिन्दी में वेबसाइट, ब्लॉग, ई-मेल, वेबसर्च, एस. एम.एस. तथा अन्य हिन्दी सामग्री उपलब्ध है ।

हिन्दी सिनेमा का उल्लेख किए बिना हिन्दी का लेख लगभग अधूरा है । मुंबई स्थित 'बॉलीवुड' हिन्दी फिल्म उद्योग पर करोड़ों भारतीयों की धड़कने अटकी रहती है । प्रत्येक चलचित्र में कई हिन्दी और उर्दू (खड़ी बोली) के साथ-साथ अवधी, बम्बईया हिन्दी, भोजपुरी, राजस्थानी जैसी बोलीयां भी संवाद और गाने में उपयुक्त दिखती हैं । अब मोबाइल कम्पनियां ऐसी हैन्डसेट बना रही है जो हिन्दी और भारतीय भाषाओं को समर्थन करती है । बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हिन्दी जानने वाले कर्मचारियों को वरीयता दे रही है । हॉलीवुड की फिल्में हिन्दी में डब हो रही है और हिन्दी फिल्में देश के बाहर अधिक कमाई कर रही है । हिन्दी, विज्ञापन उद्योग की भाषा बनती जा रही है । गूगल ट्रान्सलेशन, फोनेटिक टूल्स, गूगल असिस्टेंट इत्यादि हिन्दी के क्षेत्र में नई-नई रिसर्च कर अपनी सेवाओं को बेहतर कर रहा है । हिन्दी और भारतीय भाषाओं की पुस्तकों का डिजिटलकरण हो रहा है । फेसबुक और व्हाट्सएप हिन्दी और भारतीय भाषाओं के साथ तालमेल बिठा रहे हैं । सोशल मीडिया ने हिन्दी में लेखन और पत्रकारिता के नए युग का सूत्रपात किया है । कई जनान्दोलन को जन्म देने और चुनाव जिताने-हराने में उल्लेखनीय और आश्चर्यचकित भूमिका निभाई है । सितंबर 2018 में प्रकाशित हुई एक अमेरिकी रिपोर्ट के अनुसार हिन्दी में ट्वीट करना अत्यंत लोकप्रिय रहा है । हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का बाजार इतना बड़ा है कि अनेक कम्पनियां अपने उत्पाद और वेब साइटों को हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में ला रही हैं ।

निष्कर्षत: भाषा विकासशील है और हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो सर्वत्र असर डालती है । यह किसी साँचे जैसा स्वरूप पेश करती है जो किसी भी ढ़ाचे में घूल जाती है । हिन्दी माचिस की डिब्बी है तो उसकी बोलियां तिल्लियां हैं, जो माचिस को माचिस बनाती हैं । हिन्दी समुन्दर है तो बोलियां नदी है । हिन्दी पेड़ है, बोलियां हरी-भरी शाखा । आजकल युवाओं द्वारा जिस तरह की हिन्दी बोली जा रही है वो शुद्ध हिन्दी ना होकर नई पीढ़ी की हिंगलिश (हिन्दी+इंग्लिश) भाषा है । इस मिश्रित (खिचड़ी) भाषा से युवा वर्ग भले ही हिन्दी भाषा से जुड़ा हुआ हो किन्तु भाषा की अपनी मौलिकता, व्याकरण और भाषा नीति के लिए यह हिंगलिश एक उपयुक्त माध्यम नहीं है । समग्र में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी बढ़ रही है ।

-नन्दिनी सोनी
बी.ए हिन्दी (विशेष)
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

विशेष सूचना

'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' त्रैमासिक पत्रिका के आगामी अंक हेतु लेख आमंत्रित हैं ।

'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका के आगामी अंक हेतु हिन्दी भाषा से सम्बंधित विविध विषयों पर लेख-आलेख, निबंध एवं शोध सामग्री भेजें । पत्रिका के स्थायी स्तम्भ 'साक्षात्कार' में वरिष्ठ साहित्यकारों, पत्रकारों, भाषाविदों, शिक्षाविदों, सरकारी कार्यालयों के उच्चाधिकारियों, प्रशासनिक सेवा अधिकारियों, विभिन्न देशों के राजनयिकों आदि के भाषा पर केंद्रित साक्षात्कारों को सम्मिलित किया जाता है । इसी तरह 'लोक भाषाओं का चमत्कार' स्तम्भ में किसी एक भारतीय भाषा-उपभाषा एवं बोलियों पर केंद्रित लेखों को सम्मिलित किया जाता है जिसे विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जाता है । अब तक बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, कुमाऊंनी, भोजपुरी, पंजाबी, अवधी, नेपाली, मैथिली, डोगरी, संस्कृत, संथाली, तमिल, कश्मीरी, मालवी, बघेली एवं पूर्वोत्तर भारत के भाषाओं के विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं । 'युवा मत' स्तम्भ में देश के विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत शोधार्थियों एवं युवा लेखकों के भाषा पर केंद्रित शोधपरक लेखों को सम्मिलित किया जाता है । पत्रिका के आगामी अंक हेतु कृपया बंगाली भाषा और उसका साहित्य, हिन्दी और बंगाली भाषाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन, आधुनिक हिन्दी साहित्य में बंगाली भाषा की उपस्थिति, आठवीं अनुसूची एवं बंगाली भाषा की वर्तमान स्थिति मातृभाषा शिक्षा और बंगाली भाषाए बंगाली भाषा के संरक्षण में सरकार एवं समुदाय की भूमिका आदि से सम्बंधित सारगर्भित लेख नीचे दिए गए ई-मेल पर भेजें ।

E-mail : hindustanibhsahabharati@gmail.com

ब्रिटिश कालीन शिक्षा और भारतीय शिक्षा आयोग का योगदान

डॉ. विनीता शुक्ला

ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप वैदिककाल, बौद्धकाल व मध्यकालीन शिक्षा से अत्यधिक भिन्न हो गया था। सन् 1857 की भारतीय क्रांति के उपरांत भारत की शासन सत्ता कंपनी से ब्रिटिश संसद के हाथों में आ गई थी। उस समय मध्यकालीन शिक्षा का विस्तार था। मुस्लिम शिक्षा के केंद्र मदरसे और मकतब थे। शिक्षा का माध्यम संस्कृत, अरबी व फारसी भाषाएं थी। ब्रिटिश सरकार का प्रभुत्व स्थापित होने पर मध्यकलीन शिक्षा के उद्देश्य, अस्तित्व और स्वरूप बदलने लगे थे। 1784 में एशियाटिक सोसाइटी नामक संगठन की स्थापना की गई। इस संगठन के माध्यम से भारतीय ग्रंथों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करना प्रारंभ किया गया। शिक्षा प्रणाली किसी भी राष्ट्र के उत्थान में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शिक्षा प्रणाली का सीधा प्रभाव राष्ट्र के भविष्य व नागरिकों के विकास पर पड़ता है। शिक्षा प्रणाली ही निश्चित करती है कि देश की शिक्षा पद्धति कैसी हो। गुरुकुल परंपरा हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली थी या कह सकते हैं कि शिक्षा की नींव वैदिककालीन शिक्षा से ही पनपी। गुरुकुल परंपरा की व्यावहारिक शिक्षा के फलस्वरूप ही हम विश्वगुरु के रूप में माने जाते थे, किन्तु ब्रिटिश शासन काल तक आते-आते शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित हो गया। ब्रिटिश काल में शिक्षा के अंतर्गत भारतीय संस्कृति व ज्ञान का स्थान पाश्चात्य सभ्यता ने ले लिया था। देश में शासन काल के आधार पर शिक्षा का अस्तित्व बदलता रहा। वैदिककाल व बौद्धकाल से प्रारंभ हुई शिक्षा व्यवस्था मध्यकाल में आते ही परिवर्तित हो गई थी। मुगल काल के पश्चात ब्रिटिश शासन काल में देश में सभी क्षेत्रों में अत्यंत परिवर्तन हुए शिक्षा का क्षेत्र भी परिवर्तन के प्रभाव से नही बचा। पुनः शिक्षा का स्वरूप, उद्देश्य, प्रणाली बदलने लगी। आज हम ब्रिटिश शासन काल में शिक्षा के बदलाव का अध्ययन करते हुए भारतीय शिक्षा आयोग का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान तथा महत्व का उपयोगी ज्ञान प्राप्त करेंगे।

भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर कमीशन)- सन् 1854 के घोषणा पत्र के बाद भारत की शिक्षा नीतियों की ओर कोई ध्यान नही दिया गया, धीरे-धीरे शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण होती गई। वुड के घोषणा पत्र के अनुसार मिशनरियों का एकाधिकार समाप्त होने लगा। अतः ईसाई मिशनरी अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठे। उन्होंने भारत सरकार के विरुद्ध यह कह कर विद्रोह प्रारंभ कर दिया कि भारत में शिक्षा नीति वुड के घोषणा पत्र के विरुद्ध चल रही है। तत्पश्चात इन लोगों ने इंग्लैंड में 'जनरल काउंसिल आफ एजुकेशन इन इंडिया' नामक एक संगठन का गठन किया। सन् 1882 में जब लार्ड रिपन भारत के वायसराय पद पर नियुक्त हुए, तब मिशनरियों के एक प्रतिनिधि मण्डल ने लार्ड रिपन से मिलकर भारतीय शिक्षा की जाँच करने की प्रार्थना की। शिक्षा व्यवस्था के परीक्षण हेतु रिपन भारत आए। भारत आकर रिपन ने 3 फरवरी 1882 को 'भारतीय शिक्षा आयोग' (हंटर कमीशन) की नियुक्ति की। वायसराय की कार्यकारिणी सभा के सदस्य सर विलियम हंटर 'भारतीय शिक्षा आयोग' के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। इन्हीं के नाम पर इस आयोग को हंटर कमीशन नाम से भी जाना जाता है। हंटर के अतिरिक्त 'भारतीय शिक्षा आयोग' में 20 अन्य सदस्य थे जिनमें 7 भारतीय प्रतिनिधि भी नियुक्त किए गए थे।

हंटर कमीशन के कार्य क्षेत्र- भारतीय शिक्षा आयोग के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत विशेष रूप से इस बात की जाँच करनी थी कि 1854 के घोषणा पत्र के सिद्धांतों को किस सीमा तक लागू किया गया तथा साथ ही शिक्षा नीति को बेहतर बनाए जाने के लिए किन सुझावों को अपनाया जाए और कौन से प्रयास किए जाने योग्य हैं आदि विषयों पर विचार किया गया। संक्षेप में हंटर कमीशन की जाँच के कार्य क्षेत्र को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझ सकते हैं-

- सरकार ने उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देकर क्या प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की है। देश में प्राथमिक शिक्षा की क्या स्थिति है?
- प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए?
- भारत की शिक्षा प्रणाली में राजकीय विद्यालयों का क्या स्थान है?
- भारतीय शिक्षा में राजकीय विद्यालयों की आवश्यकता है कि नही?
- शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयासों के प्रति सरकार की नीतियाँ क्या होनी चाहिए?
- देश की शिक्षा व्यवस्था में मिशन स्कूलों का क्या स्थान है?

जाँच के उपरांत लगभग 10 महीनों के बाद 1883 में भारतीय शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। जिसके अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक की व्यवस्था की रूपरेखा थी।

प्राथमिक शिक्षा- भारतीय शिक्षा आयोग के अनुसार सरकार को जनसाधारण के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, उसका प्रसार और सुधार की ओर पहले से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्राथमिक शिक्षा की नीति, संगठन, आर्थिक व्यवस्था, पाठ्यक्रम और शिक्षकों का प्रशिक्षण आदि पक्षों पर सुझाव प्रस्तुत किए। भारतीय शिक्षा आयोग के अनुसार प्राथमिक शिक्षा जीवन के व्यावहारिक पक्ष से संबंधित होनी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएं हों। इसे सरकार द्वारा पूर्ण संरक्षण मिलन चाहिए। आयोग का सुझाव था कि सरकार प्राथमिक शिक्षा के संगठन का कार्य नगर पालिकाओं और जिला परिषदों को प्रदान कर दें। ये संस्थाएं शिक्षा परिषद बनाकर अपने-अपने क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, प्रबंध, विकास, व्यय तथा निरीक्षण आदि करें। स्थानीय संस्थाएं प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रथक कोश का निर्माण करें और यह धनराशि केवल प्राथमिक शिक्षा पर ही व्यय की जाए। सभी व्यवस्थाओं के साथ ही आयोग ने शिक्षा के पाठ्यक्रम के निर्धारण की ओर भी ध्यान केंद्रित किया। आयोग का सुझाव था कि प्रत्येक प्रांत अपनी आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण करे। शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु तथा प्रशिक्षण के निरीक्षण के लिए नार्मल स्कूलों की संख्या में वृद्धि करने पर जोर दिया। प्रत्येक विद्यालय निरीक्षण के क्षेत्र में कम से कम एक नार्मल स्कूल अवश्य होना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा- माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिए आयोग ने सरकार के माध्यमिक शिक्षा के प्रति समस्त दायित्वों को समाप्त कर दिया और शिक्षा की जिम्मेदारी योग्य, अनुभवी और कुशल भारतीयों को दे दी। आयोग ने यह भी सुझाया कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार सहायता अनुदान प्रणाली का पालन करे। जिस क्षेत्र की जनता सहायता अनुदान से माध्यमिक स्कूल चलाने में समर्थ ना हो ऐसे स्थानों में सरकार आदर्श माध्यमिक स्कूल स्थापित कर सकती है। भारतीय शिक्षा आयोग ने माध्यमिक स्तर पर दो प्रकार के पाठ्यक्रम का सुझाव दिया। पहला साहित्यिक पाठ्यक्रम और दूसरा जीवनोपयोगी पाठ्यक्रम।शिक्षा के विकास हेतु शिक्षाकों का सर्वाधिक सहयोग है, अत: शिक्षा का उच्च स्तर बनाए रखने के लिए आयोग ने शिक्षकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया।

उच्च शिक्षा- प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के समान ही आयोग ने उच्च शिक्षा की व्यवस्था पर भी ध्यान केंद्रित किया और कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए। माध्यमिक शिक्षा की भाति उच्च शिक्षा का उत्तरदायित्व अपने पास ना रखकर व्यक्तिगत रूप से नागरिकों को दिया जाना चाहिए। गैर-सरकारी महाविद्यालयों को सहायता अनुदान देने का आधार परीक्षाफल न हो, बल्कि अनुदान देते समय शिक्षकों की संख्या, व्यय, कार्यक्षमता तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए। प्राध्यापकों की नियुक्ति के लिए यूरोपीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त भारतीयों को प्राथमिकता दी जाए। योग्य विद्यार्थियों को शिल्प संबंधी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृतियाँ देकर विदेश भेजा जाए। विद्यार्थियों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए विशेष पाठ्य पुस्तकें लिखी जाए जिसमें प्राकृतिक धर्म तथा मानव धर्म के सिद्धांतों का पूर्ण विवेचन हो। समय-समय पर आवश्यकता अनुसार कॉलेजों के भवन निर्माण, फर्नीचर पुस्तकालय तथा शिक्षण सामग्री आदि के लिए विशेष सहायता अनुदान भी दिए जाएं।

विशेष शिक्षा व्यवस्था- भारतीय शिक्षा आयोग के सुझाव के अनुसार गैर सरकारी स्कूलों में धार्मिक शिक्षा देने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

- आयोग का विचार था कि महिला शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। बालिका विद्यालयों के लिए सहायता अनुदान के नियम सरल होने चाहिए तथा पाठ्यक्रम भी भिन्न होना चाहिए।
- महिला शिक्षा का प्रसार करने के लिए उनकी शिक्षा निशुल्क होनी चाहिए।
- बालिका विद्यालयों के निरीक्षण के लिए सुशिक्षित महिला शिक्षिकाएं नियुक्त की जाएं।
- आयोग के अनुसार मुसलमानों की शिक्षा पर भी विशेष प्रोत्साहन दिया जाए।
- जिन स्कूलों में मुसलमानों की संख्या अधिक है वहाँ हिन्दुस्तानी तथा फारसी पढ़ाने की व्यवस्था की जाए।
- पिछड़े क्षेत्रों तथा पिछड़ी जातियों में शिक्षा का विस्तार करने के लिए प्रयास किए जाए और उनकी शिक्षा निशुल्क होनी चाहिए।
- भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति का मुख्य कारण ईसाई धर्म प्रचारकों का आंदोलन था। आयोग ने प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय संस्थाओं को सौपने का निर्णय दिया और उच्च शिक्षा व्यक्तिगत प्रयासों अर्थात भारतीय जनता के हाथों में सौपने का सुझाव दिया।

भारतीय शिक्षा आयोग के गुण एवं दोष- सभी प्रणाली, व्यवस्था या संगठन के कुछ गुण एवं दोष होते हैं। इसी प्रकार हंटर कमीशन के सुझाव, नियम व सिफारिशों में भी गुणों के साथ दोष भी उभर आए थे। आइए एक दृष्टि भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर कमीशन) की नीतियों के गुण एवं दोष पर डालें-

गुण-

- आयोग ने भारतीय शिक्षा के लिए एक निश्चित नीति लागू की और 1854 के घोषणा-पत्र द्वारा निर्धारित सिद्धांतों की पुष्टि की।
- आयोग ने शिक्षा का उत्तरदायित्व भारतीयों को देने का सुझाव देकर, देश में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत की ।
- ईसाई मिशनरियों को भारतीय शिक्षा में प्रमुख स्थान न देकर आयोग ने भारतीय शिक्षा को मिशनरियों के अधीन होने से बचाया।

शेष पृष्ठ संख्या 40 पर

कहीं चलन न बन जाए रोमन लिपि में हिन्दी का लिखा जाना

पिछले दिनों एक संगोष्ठी में जाना हुआ । एक प्रतिभागी का कहना था कि हिन्दी को रोमन लिपि में लिखने से हमें परहेज नहीं करना चाहिए, बल्कि इसका स्वागत किया जाना चाहिए । उन्होंने तर्क भी दिए कि एसएमएस, कंप्यूटर, इंटरनेट में रोमन लिपि के सहारे हिन्दी लिखने में आसानी होती है । इसलिए समय की जरूरत के मुताबिक इस बात पर जोर देना हमें बंद करना चाहिए कि हिन्दी को हम देवनागरी लिपि में लिखें । उन्होंने यह भी कहा कि आजकल फिल्मों की स्क्रिप्ट, नाटकों की स्क्रिप्ट, नेताओं के भाषण के साथ-साथ सरकारी कार्यालयों में उच्च अधिकारियों के सम्बोधन-अभिभाषण आदि के लिए लिखे जाने वाले वक्तव्य रोमन लिपि में लिखे होते हैं । देवनागरी में टाइप करने में समय अधिक लगता है । टाइप करना कठिन भी है । रोमन में मोबाइल में भी लिखना सरल है । इसलिए रोमन लिपि में हिन्दी लिखने से हिन्दी का प्रचार तेजी से होगा । सरसरी तौर पर ये बातें जंचती हुई लग सकती हैं । परन्तु यदि हम इन्हें इतिहास, समाज और भाषायी संस्कृति के पहलुओं पर विचार करते हुए देखें तो कई महत्वपूर्ण बातें सामने आती हैं जिनको नजरअंदाज नहीं किया जा सकता । किया तो इतिहास को झुठलाना होगा ।

वस्तुत: भाषा एक सदा विकसित होने वाले और बदलने वाला क्रियाकलाप है जिसके पीछे सबसे बड़ा योगदान उस भाषा के मूलभाषियों का होता है । हिन्दी भाषा उसका अपवाद नहीं है । हो भी नहीं सकती । हालांकि यह भी उतना ही सत्य और खरा है कि हिन्दी को विकसित करने में हिन्दीतर लोगों की बहुत बड़ी भूमिका है । दक्षिण भारत के भाषा-भाषियों के मध्य हिन्दी का प्रचार-प्रसार इन हिन्दीतर भाषियों की साधना का ही प्रतिफल है । बहरहाल, भाषा विज्ञान कहता है कि किसी भाषा का प्रसार तथा चरित्र उस भाषा का उपयोग करने वाले लोगों द्वारा लगातार परिभाषित और पुन: परिभाषित होते रहने में निहित है । औपनिवेशिक अतीत वाले क्षेत्रों में उपनिवेशकों की भाषा के शब्दों को भी खुलकर अपनाया जाता है । भारत के साथ भी ऐसा ही है । जापान, क्यूबा, तुर्की, निकारागुआ, फ्रांस, जर्मनी आदि जैसे विश्व के कई देशों के साथ भी कुछ-कुछ ऐसा ही है । इसलिए अधिकांश देशों ने उपनिवेशवाद से मुक्ति मिलते ही अपनी मूल भाषा के उपयोग के वास्ते कमर कस ली । नतीजा सामने है । न क्यूबा में अंग्रेजी या अन्य औपनिवेशिक भाषा में कामकाज होता है, न जापान, फ्रांस, जर्मनी, वियतनाम, पोलैंड आदि देशों में । भले ही, कामकाज सरकारी हो या निजी कंपनियों में । तुर्की के उदाहरण से तो हम सब वाकिफ हैं । मुस्तफा कमाल पाशा ने तुर्की के औपनिवेशिक दासता से छुटकारे के तुरंत बाद पूरे देश में तुर्की के इस्तेमाल और व्यवहार का फरमान जारी कर दिया । यह हम और हमारा भारतीय समाज ही है जो स्वाधीनता के 75वर्ष बाद आज भी इसी एक मुद्दे पर रस्साकशी में जुटे हैं । आपको याद होगा एक नाम डॉ. दौलत सिंह कोठारी का । देश के ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक, शिक्षाविद

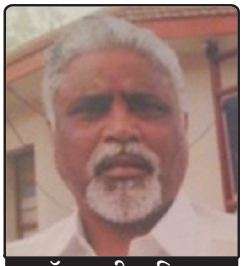
डॉ. अमरीश सिन्हा

और नीति नियंता थे वे । उन्हें देश की शिक्षा व्यवस्था और प्रशासन के बारे में गहराई तक समझ थी । उनका हमेशा यह मानना रहा कि जिन नौकरशाहों को इस देश की भाषाएं नहीं आतीं, भारतीय साहित्य और संस्कृति का ज्ञान नहीं है, उन्हें भारत सरकार में शामिल होने का कोई हक नहीं है । उन्होंने कहा था कि साहित्य ही समाज को समझने की दृष्टि देता है ।उनके निर्देशन में ही शिक्षा के संबंध में कोठारी समिति का गठन भारत सरकार ने किया था और उनकी सिफारिशों पर ही वर्ष 1979 से सभी प्रशासनिक सेवाओं में पहली बार अपनी भाषाओं में लिखने की छूट मिली । इसके अद्‌भुत परिणाम देखने को मिले । परीक्षा में बैठने वालों की संख्या एकबारगी ही दस गुना बढ़ गई । गरीब घरों के मेधावी छात्र आई.ए.एस. बनने लगे । आदिवासी, अनुसूचित जाति की पहली पीढ़ी के बच्चे प्रशासनिक सेवाओं में चुने गए । रिक्शाचालक का लड़का भी आई.ए.एस. बन सका और दूसरे के घरों में काम करने वाली की लड़की भी । वरना 1979 से पहले सिर्फ धनाढ्य अंग्रेजीदां के सुपुत्र-सुपुत्रियां ही जिलाधीश की कुर्सियों पर काबिज हो पाती थीं । संविधान में समानता के इसी आदर्श तक पहुंचने की लालसा हमारे संविधान-निर्माताओं के मन में थी । यद्यपि वर्ष 2013 की शुरूआत में इस पध्दति को बदलने की कोशिश की गई। एक डर सा छा गया देश के असंख्य युवक-युवतियों के मन में । संसद में बहस हुई और सिविल सेवाओं में भारतीय भाषाओं का परीक्षा का माध्यम बनाए रखने की पद्धति पूर्ववत रखने का फैसला ले लिया गया । यह सुखद और सुकुन भरा पक्ष रहा ।

शब्दों से प्रगाढ़ता बनाता शब्दों को आसान :

लेकिन फिर वह मसला ज्यों-का-त्यों रह जाता है कि हिन्दी के लिए रोमन लिपि के इस्तेमाल के क्या-क्या खतरे हैं । महज इस वजह से कि हमें मोबाइल पर टाइप करते वक्त रोमन का प्रयोग सरल लगता है, रोमन लिपि की तरफदारी नहीं की जा सकती । यह विषय वस्तुपरक (सब्जेक्टिव) भी है । जो कार्य किसी एक के लिए आसान हो सकता है, वही दूसरे के लिए कठिन और दुरूह भी हो सकता है । ये दोनों स्थितियां व्यक्ति की क्षमता, योग्यता, उम्र, परिवेश, संस्कार और कौशल आदि कई गुण-दोषों पर निर्भर करती हैं । वैसे भी, अब एंड्राइड फोनों और कम्प्यूटरों दोनों जगह देवनागरी की वर्णमाला स्क्रीन पर एक क्लिक पर डिस्पले हो जाती है । आप हर चौकोर खाने की उंगली से छूते जाएं, टेक्स्ट टाइप होता जाएगा । कहां क्या परेशानी है ? इस संगोष्ठी में ही एक युवा अपने एंड्राइड फोन पर इस सुविधा को प्रदर्शित करते हुए सभी के समक्ष देवनागरी लिपि की पैरवी करता हुआ दिखा । यह देखकर युवा वर्ग पर लगने वाला यह आरोप भी खारिज होता है कि अंग्रेजी की मुखालफत करने वाला वर्ग युवा वर्ग

है । हिन्दी में सरकारी कामकाज को कई लोग कठिन मानते हैं । उच्च शिक्षा हिन्दी या मातृभाषा में नहीं प्राप्त की जा सकती, न ही, विज्ञान और तकनीकी संबंधी ज्ञान अंग्रेजी के इतर भारतीय भाषाओं में हासिल नहीं की जा सकती - यह मानना सिरे से मिथ्या है; कारण यह कि जापान, चीन और दोनों कोरियाई देश, जर्मनी और यहां तक इजरायल भी अंग्रेजी में शिक्षा प्रदान नहीं करते हैं जबकि दुनिया में ये देश तकनीकी प्रगति के प्रणेता माने जाते हैं ।

इस संदर्भ में 'सरल' और 'कठिन' पर थोड़ी चर्चा जरूरी है। भाषा के बनावटीपन को छोड़ दें (जैसे, ट्रेन के लिए 'लौहपथगामिनी' या ट्रैफिक सिग्नल के लिए 'यातायात संकेतक' का प्रयोग) तो क्या सरल है और क्या कठिन, यह अक्सर उपयोग की बारम्बारता पर निर्भर करता है । बार-बार उपयोग से शब्दों से परिचय प्रगाढ़ हो जाता है और वे शब्द हमें आसान प्रतीत होने लगते हैं । जैसे 'रिपोर्ट' के लिए महाराष्ट्र में 'अहवाल' शब्द लोकप्रिय है लेकिन उत्तर प्रदेश में 'आख्या' का प्रयोग होता है । बिहार में 'प्रतिवेदन' का, तो कई अन्य जगह देवनागरी में 'रिपोर्ट' ही लिखी जाती है । उर्दू में पर्यायवाची शब्द है रपट । इसी तरह श्मुद्रिका (दिल्ली की बस सेवा में प्रयुक्त शब्द), विश्वविद्यालय, तत्काल सेवा, पहचान पत्र प्रचलित शब्द हैं गरज कि ये संस्कृत मूल शब्द हैं । स्कूली छात्र-छात्राओं के लिए बीजगणित (Algebra), अंकगणित (Arithmetic), ज्यामिति (Geometry), वाष्पीकरण (Veporisation) आदि संस्कृत मूल शब्द आसान हैं, क्योंकि प्रयोग की बारम्बरता यहां लागू होती है । क्वथनांक, गलनांक, घनत्व, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, सिद्धांत, गुणनफल, विभाज्यता नियम, समुच्चय सिध्दांत, बीकर, परखनली, कलन शास्त्र आदि भी ऐसे ही शब्द हैं । इनका प्रथम प्रयोग दुरूह प्रतीत हो सकता है, पर निरंतर प्रयोग इन्हें हमारे लिए सरल बना देता है।

अन्य भारतीय भाषाओं के साथ तालमेल जरूरी

अंग्रेजी के पैरोकारों का मानना है कि अंग्रेजी समृद्ध भाषा है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क-भाषा है । शेक्सपीयर, मिल्टन और डारविन जैसे मनिषियों ने उसमें अपनी रचनाएं की हैं । ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया में अंग्रेजी बोली जाती है, इस बात को स्वीकारने में कोई गुरेज नहीं है । लेकिन अंग्रेजी एकमात्र समृद्ध भाषा है, सत्य नहीं है । ऐसा ही होता तो कम्प्यूटर के मसीहा कहे जाने वाले अमेरिकी निवासी बिल गेट्स अधिकारिक और सार्वजनिक रूप से यह नहीं कहते कि संस्कृत कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा और इसकी देवनागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है ।

प्रसंगवश यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यूरोपीय देशों में अंग्रेजी का प्रसार उसकी समृद्धि के कारण नहीं हुआ । उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में लाखों लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है, उनकी जमीन छीन ली गई है, वहां की जनता को गुलाम बनाकर बेचा गया है और आज भी कई समुदाय गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं । यूरोपीय भाषाओं के बारे में एक भ्रान्त धारणा यह भी है कि उन सभी में अन्तरराष्ट्रीय शब्दावली प्रचलित है । अंग्रेजी की हिमायत करने वालों के पास एक तर्क यह भी है । लेकिन सत्य यह है कि अंग्रेजी सहित इन सभी यूरोपीय भाषाओं के पास पारिभाषिक शब्दावली गढ़ने के लिए कोई एक निश्चित स्त्रोत नहीं है । वे लैटिन से शब्द गढ़ती हैं । फ्रेंच, इतालवी के लिए यह स्वाभाविक है, क्योंकि वे लैटिन परिवार की हैं। यूरोप की भाषाएं ग्रीक के आधार पर शब्द बनाती हैं, क्योंकि यूरोप का प्राचीनतम साहित्य ग्रीक मन है और वह बहुत सम्पन्न भाषा रही है । जर्मन, रूसी भाषाएं बहुत से पारिभाषिक शब्द अपनी धातुओं या मूल शब्द भंडार के आधार पर बनती हैं ।जिस भाषा के पास अपनी धातुएं हैं और उपयुक्त मूल शब्द होंगे, वह भाषा समृध्द होगी । उसे ग्रीक या लैटिन या किसी अन्य भाषा से उधार लेने की जरूरत नहीं । संस्कृत, हिन्दी और भारत की अन्य भाषाओं, विशेषतया दक्षिण भारत की मलयालम, तमिल और कन्नड जैसी शास्त्रीय भाषाएं तथा महाराष्ट्र की मराठी (मराठी को देश की छठी शास्त्रीय भाषा का दर्जा देने के बाबत गठित अध्ययन समिति ने अपनी अनुशंसा दे दी है) के पास धातु-शब्दों का भंडार है । अंग्रेजी में अपने घर की पूंजी कुछ नहीं है । ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, फारसी, संस्कृत और हिन्दी से उधार माल को अंग्रेजी में अंग्रेजी शब्द कहकर खपाया जाता है । बैंक, रेस्तरां, होटल, आलमीरा, लालटेन, जंगल, पेडस्टल ('पदस्थली' से बना) ऐसे ही चंद शब्द हैं जो मिसाल के लिए काफी हैं । एक तथ्य और है । धार्मिक कारणों से ब्रिटेन में ग्रीक की अपेक्षा लैटिन अधिक पढ़ी जाती रही है । इसलिए ग्रीक शब्दों के आधार पर बनी शब्दावली अधिक गौरवमयी समझी जाती है । हिन्दी की बात करें तो इस भाषा में कई पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हो चुका है ।

कई विद्वान निजी तौर पर पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करते रहे हैं । अज्ञेय ने फ्रीलांस के लिए 'अनी-धनी' शब्द गढ़ा, हालांकि यह शब्द चला नहीं । भारत सरकार के अधीन कार्यरत वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग इस दिशा में सक्रिय रूप से कार्यरत रहते हुए हिन्दी और अन्य मुख्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दावली, शब्दार्थिकाओं, पारिभाषिक शब्दकोशों और विश्वकोशों का निर्माण करती रही है जिनमें सभी विज्ञानों, सामाजिक विज्ञानों और मानविकी विषयों को तथा प्रशासनिक लेखन से संबंधित शब्दावली को सम्मिलित किया गया है । हिन्दी को आधुनिक अकादमिक विमर्श और ज्ञान मीमांसाके नए क्षेत्र के हिसाब से सक्षम करने के लिए लाखों नए शब्द हिन्दी में निर्मित किए गए हैं और यह प्रक्रिया अनवरत जारी है । देश की सामासिक संस्कृति (composite culture) को ध्यान में रखते हुए इतर भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय और व्यावहारिक प्रयोग के शब्द हिन्दी में शामिल किए जाते हैं । जैसे 'tomorrow' और 'note' के लिए मराठी शब्द क्रमशः 'उद्या' एवं 'नोंद' का प्रयोग महाराष्ट्र में लिखी जाने वाली हिन्दी में देखने को मिलता है । क्योंकि यह आवश्यक और उपयुक्त प्रतीत नहीं होता कि हम नए पारिभाषिक शब्द बनाते समय हमेशा संस्कृत शब्दों का

सहारा लें जैसा कि विगत में अक्सर होता रहा है, भले ही इतर भाषाओं, उर्दू, हिन्दी तथा अंग्रेजी के लोकप्रिय शब्दों या 'बोलियों' के रूप में जाने जानी वाली भाषाओं में बेहतर विकल्प मौजूद हों जिनका भाषा के मुहावरे के साथ अच्छा तालमेल हो और समझने में भी आसान हो । ज्ञानार्जन की दृष्टि से, विशेषतया अध्ययन-अध्यापन-शोध-शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्रों में 'मानक' और संस्कृतनिष्ठ शब्दों की बजाय समझ में आने वाले स्पष्ट व उपयुक्त शब्दों का उपयोग श्रेयस्कर सिध्द हुआ है । कई अंग्रेजी तकनीकी शब्द भी हूबहू देवनागरी लिपि में लिखना प्रेरक और सफल रहा है । आई. टी. से जुड़े कई शब्द यथा, कम्प्यूटर, माउस, हैंग हो जाना, प्रिंटर, टेबलेट, फोल्डर, डेस्कटॉप, एप्लिकेशन, इंस्टॉल करना, इनबॉक्स, अपलोड, डाउनलोड, ट्रैश, स्पैम, स्क्रीन आदि कुछ ऐसे ही शब्द हैं । यह जरूरी है कि हिन्दी में गरिमा और मानक के नाम पर अड़ियलपन और निरर्थक जटिलता के बंधनों को हटा दें । लोकप्रिय शब्दों को प्रयोग में लाएं पर सामासिक संस्कृति के हिसाब से, न कि सतही, अल्पकालिक और त्वरित उपाय ढूंढ़ने चाहिए । ऐसा न हो कि हिन्दी में मानकीकरण और एकरूपता की धारणा पर हम ज्यादा ही जोर देने लगें । ऐसा होने पर अस्वाभाविक और बनावटी भाषा विकसित हो जाती है जो किसी भी मूलभाषी के भाषा भंडार का हिसाब नहीं होती। विख्यात हिन्दी साहित्यकार कमलेश्वर ने कहा था- 'हिन्दी तब तक विकसित नहीं हो सकती, जब तक कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उसका गहरा संबंध नहीं बनेगा' । यदि हमें हिन्दी को बचाना है तो निश्चित रूप से क्षेत्रीय भाषाओं के साथ हमें तालमेल को विकसित करना होगा ।

दफ्तर में आते ही हिन्दी भाती नहीं

एक दिलचस्प बात यह है कि जब हम सहज होते हैं, मनोरंजन की दुनिया में होते हैं, गाने सुनते हैं, गजल-गीत सुनते हैं, फिल्में या टी. वी. धारावाहिक देखते हैं, या फिर बाजार में मोलभाव कर रहे होते हैं तब तो बड़े चाव से हिन्दी का सहारा ले रहे होते हैं, लेकिन ज्योंही कार्यालयों में- सरकारी संस्थानों में प्रवेश होता है तो हिन्दी लिखने में हमें शर्म महसूस होने लगती है या हाथ कांपने लगते हैं । कोई 'टाइपिंग नहीं आती' का रोना रोने लगते हैं, तो कोई 'जल्दी है' कहकर पीछा छुड़ाने लगते हैं । यह भी प्राय: सुनने को मिलता है कि हिन्दी के शब्द जानने के वास्ते हमारे पास 'डिक्शनरी-ग्लॉसरी' नहीं है । पर मूल मुद्दा हमेशा एक ही रहता है- हिन्दी लिखने में आत्मविश्वास की कमी । अंग्रेजी लिखने में हम बनावटी दंभ महसूस करते हैं, बस । जब आप अपनी कलम से किसी कागज पर या बैंक या रेल आरक्षण काउंटर पर फॉर्म भरते वक्त नाम लिखते हैं तो किसी टाइपिंग कला या कम्प्यूटर ज्ञान की जरूरत होती है ? किसी शब्दकोश-शब्दावली की आवश्यकता होती है ? फिर आपकी कलम की स्याही अंग्रेजी की तरफ क्यों बढ़ती है ? साफ है, या तो आप में आत्मविश्वास का अभाव है या आप अंग्रेजी के आतंक में हैं। पर यह स्पष्ट है कि तकनीक और शब्दकोशों से ज्यादा जरूरत हमें इच्छाशक्ति की है।भारत के विख्यात वैज्ञानिक व एकमात्र जीवित आविष्कारक और हिन्दी में वैज्ञानिक उपन्यास लिखकर चर्चित हुए डॉ. जयंत नार्लिकर से यह पूछे जाने पर जब वैज्ञानिक लेखन करते वक्त मौलिक चिंतन की आवश्यकता महसूस हुई तब क्या आपने अंग्रेजी भाषा में ही सोचा, उन्होंने कहा - 'यह संभव ही नहीं था' । उस समय मातृभाषा के अतिरिक्त किसी भी भाषा ने मेरी मदद नहीं की और न ही कर सकती थी । फ्रांस के पूर्व राष्ट्रपति फ्रेंकोई मितरां से जब पूछा गया कि आप अपने देश में फ्रेंच भाषा को अंग्रेजी की बनिस्पत अधिक तरजीह क्यों देते हैं, राष्ट्रपति मितरां ने कहा कि क्योंकि हमें अपने सपने साकार करने हैं । जब हम सपने अपनी भाषा में देखते हैं तो उन्हें पूरा करने के लिए जो भी काम करेंगे उनके लिए अपनी ही भाषा का प्रयोग जरूरी होगा, पराई भाषा का नहीं ।

भाषा 'फोनेटिक' है तभी वैज्ञानिक है

बहरहाल, उसी संगोष्ठी में एक और सज्जन का कहना था कि भाषा फोनेटिक (ध्वनि पर आधारित) होती है । अर्थात- सुनने में जैसा लगे, भाषा वैसी ही होनी चाहिए और इस लिहाज से तो देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी, मराठी, संस्कृत आदि भाषाओं की ही जरूरत है और भविष्य भी इनका ही है । देवनागरी लिपि में 52 वर्णाक्षर होते हैं । पांच स्वर होते हैं । शेष व्यंजन होते हैं । स्वर वे होते हैं जिन्हें उच्चारित करने के लिए ओंठ और दांतों का सहारा नहीं लिया जाता है । स्वर आधारित राग-रागिनियां हैं हमारे शास्त्रीय संगीत में । फिर कवर्ग (क, ख, ग, घ), टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ) व तवर्ग (त, थ, द, ध) आदि हैं । कितना सूक्ष्म विश्लेषण है अक्षरों का, शब्दों के उच्चारण का । बड़ी 'ई', छोटी 'इ', छोटा 'उ', बड़ा 'ऊ' की मात्राओं से शब्दों के अर्थ कितने विस्तृत हो जाते हैं ! जैसे, 'दूर' से भौगोलिक दूरी की अभिप्राय होता है तो 'दुर' से तुच्छ वस्तु का अर्थ सामने आता है । इसी प्रकार 'सुख' आनंद का पर्याय है, जबकि 'सूख' से शुष्क या सूख (कतल) जाने का बोध होता है । एक उदाहरण लें । यदि हमें 'डमरू' लिखना हो रोमन में तो हम 'dumru' या 'damroo' लिखेंगे । पर क्या पढ़ने वाला 'दमरू' नहीं पढ़ सकता है । 'ण', 'र' के प्रयोग तो हिन्दी में विलुप्त ही होते जाते रहे हैं । रोमन में बेड़ा किस कदर गर्क होगा, अनुमान लगाया जा सकता है और फिर 'क्ष', 'त्र', 'ज्ञ', 'त्र' का क्या- 'ड' और 'ड़' तथा 'ढ' और 'ढ़' का क्या करेंगे? इन सबको हटा देंगे अपने व्याकरण से, अपने जेहन से ? सुविधा और आधुनिकता के नाम पर भविष्य में ऐसा हो जाए तो अचरज नहीं । फिर देवनागरी लिपि के 52 वर्ण घटकर 25-26 रह जाएंगे । कल्पना कीजिए यदि ऐसा ही कुछ हो गया तो !

हमारे देश व पूरी दुनिया में विगत पचास वर्षों में कई भाषाएं और बोलियां विलुप्त हो गई हैं । अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा अरूणाचल प्रदेश में कई भाषाएं, बोलियां इन कारणों से लुप्त हो गईं कि कुछ की लिपियां न होने के कारण शिक्षण का माध्यम न बन सकीं और कुछ के बोलने वाले नहीं रहे । झारखण्ड में बोली जाने

वाली 'हो', 'संताली', 'मुंडारी' आदि भाषाओं को अक्षुण्ण बनाने के लिए प्रयास तीव्र हो गए हैं, क्योंकि उनके प्रयोग करने वालों की संख्या लगातार घट रही है । दरअसल सारी परेशानियां गुरूतर तब हो गई जब कम्प्यूटर का भारत की धरती पर प्रवेश हुआ । अंग्रेजी भाषा के हिमायती नागरिकों ने कहना शुरू कर दिया कि हिन्दी व दूसरी भारतीय भाषाओं का भविष्य खतरे में है । खुद कम्प्यूटर के प्रचालकों ने भी यह अफवाह फैलानी शुरू कर दी । धीरे-धीरे लोगों को यह समझ में आया कि कम्प्यूटर की तो अपनी कोई भाषा नहीं होती । यह तो डॉट (.) के रूपों को ही स्क्रीन पर प्रदर्शित करता है । फिर धीरे-धीरे, बल्कि कहें तो 21 वीं सदी में काफी तेजी से कम्प्यूटर ने इंसानी जीवन में दखल देना शुरू कर दिया । तब भी आरंभ के कुछ वर्षों तक भी अंग्रेजी को ही कम्प्यूटर की मित्र भाषा समझा गया । लेकिन धीरे-धीरे यह बात सामने आई कि कम्प्यूटर की दरअसल कोई भाषा नहीं होती है और अगर भाषा की कोई दरकार है अप्लिकेशंस को लेकर तो वह है देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली भाषाएं । मसलन हिन्दी, मराठी, संस्कृत आदि । माइक्रोसॉफ्ट के जनक बिल गेट्स ने यह भी कहा है कि देवनागरी लिपि और इस लिपि में लिखी जाने वाली संस्कृत एवं हिन्दी भाषाएं सर्वाधिक तार्किक और तथ्यपरक भाषाएं हैं ।

देवनागरी लिपि : श्रेष्ठ लिपि

आइए, यह भी जान लें कि हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी कहां से और कैसे शुरू हुई; क्योंकि भारत की संविधान सभा ने भी 14 सितम्बर 1949 को यह घोषणा आधिकारिक तौर पर की थी कि संघ की राजभाषा हिन्दी होगी जिसकी लिपि देवनागरी होगी । वस्तुत: 'देवनागरी' लिपि नागरी लिपि का विकसित रूप है । ब्राम्ही लिपि का एक रूप 'नागरी लिपि' था । नागरी लिपि से ही 'देवनागरी लिपि' का विकास हुआ । अनेक प्राचीन शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों में ब्राह्मी लिपि प्रयुक्त हुई है । अशोक के शिलालेख भी ब्राह्मी लिपि में ही लिखे गये हैं । ईसा की चौथी शताब्दी तक समस्त उत्तर भारत में ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी । ईसा-पूर्व पाँचवीं सदी तक के लेख ब्राह्मी लिपि में लिखे हुए उपलब्ध हुए हैं । इस प्रकार यह लिपि लगभग ढाई हजार वर्ष पुरानी है । इतनी प्राचीन होने के कारण इसे 'ब्रह्मा की लिपि' भी कहा गया है । यही भारत की प्राचीनतम मूल लिपि है, जिससे आधुनिक सभी भारतीय लिपियों का जन्म हुआ ।

ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी से लेकर ईसा के बाद चौथी शताब्दी तक के लेखों की लिपि ब्राह्मी रही है । मौर्य-काल में भारत की राष्ट्रीय लिपि 'ब्राह्मी' ही थी । इसके बाद ब्राह्मी लिपि दो रूपों में विभाजित हो गई- उत्तरी ब्राह्मी तथा दक्षिणी ब्राह्मी । उत्तरी ब्राह्मी प्रमुखत: विंध्याचल पर्वतमाला के उत्तर में प्रचलित रही तथा दक्षिणी ब्राह्मी विंध्याचल के दक्षिण में । 'उत्तरी ब्राह्मी' का आगे चलकर विविध रूपों में विकास हुआ । उत्तरी ब्राह्मी से ही दसवीं शताब्दी में 'नागरी लिपि' विकसित हुई तथा नागरी लिपि से 'देवनागरी लिपि' का जन्म हुआ । उत्तर भारत की अधिकांश लिपियां, यथा, कश्मीरी, गुरूमुखी, राजस्थानी, गुजराती, बंगला, असमिया, उड़िया आदि भाषाओं की लिपियाँ नागरी लिपि का ही विकसित रूप हैं । यही कारण है कि देवनागरी लिपि तथा उक्त सभी लिपियों में अत्यधिक समानता है । 'दक्षिण ब्राह्मी' से दक्षिण भारतीय भाषाओं, यथा, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालय आदि भाषाओं की लिपियों का विकास हुआ । यद्यपि इन लिपियों का विकास भी मूलत: ब्राह्मी लिपि से ही हुआ है, तथापि देवनागरी लिपि से इनमें कुछ भिन्नता आ गई है ।

इन कारणों से देवनागरी लिपि है वैज्ञानिक

◆ यह लिपि विश्व की सभी भाषाओं की ध्वनियों का उच्चारण करने में सक्षम है । अन्य लिपियों में, विशेषकर विदेशी लिपियों में यह क्षमता नहीं है । जैसे अंग्रेजी में देवनागरी लिपि की महाप्राण ध्वनियों, कुछ अनुनासिक ध्वनियों आदि के लिए कोई उपयुक्त ध्वनि उपलब्ध नहीं है ।

◆ देवनागरी लिपि में जो लिखा जाता है, वही बोला जाता है और जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है । लिखने और बोलने में समानता के कारण इसे सीखना सरल है । विदेशी लिपियों में यह विशेषता नहीं है । अंग्रेजी में तो बिल्कुल ही नहीं ।

◆ देवनागरी लिपि में प्रत्येक वर्ण की ध्वनि निश्चित है । वर्णों की ध्वनियों में वस्तुनिष्ठता है, व्यक्तिनिष्ठता नहीं । अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण हर व्यक्ति अपने तरीके से करता है ।

◆ इस लिपि में एक वर्ण एकाधिक ध्वनियों के लिए प्रयुक्त नहीं होता। अत: किसी भी वर्ण के उच्चारण में कहीं भी भ्रम की स्थिति नहीं है । अंग्रेजी में एक ही वर्ण भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूप में उच्चारित होता है अत: भ्रम की स्थिति रहती है ।

◆ देवनागरी लिपि में प्रत्येक प्रयुक्त वर्ण ध्वनि अवश्य देता है । चुप नहीं रहता । अंग्रेजी में कहीं-कहीं प्रयुक्त वर्ण चुप भी रहते हैं । जैसे, ठनकहमज में 'क' का उच्चारण नही होता । walk और knife में क्रमश: l और k चुप रहते हैं । कैसी विडम्बना है कि जिन वर्णों का सृजन ध्वनि देने के लिए किया गया है, भावों की सम्प्रेषणीयता के लिए किया गया है, उन्हें प्रयुक्त होने के बाद भी चुप रहना पड़ता है ।

◆ देवनागरी लिपि में ध्वनियों को अधिकाधिक वैज्ञानिकता प्रदान करने के लिए स्वरों तथा व्यंजनों की पृथक-पृथक वर्णमाला निर्मित की गई है ।

◆ स्वरों के उच्चारण के समय जैसी मुख की आकृति होती है, वैसी ही आकृति सम्बन्धित वर्ण की होती है । जैसे- 'अ' का उच्चारण करते समय आधा मुख खुलता है । 'आ' की रचना पूरा मुख खुलने के समान है । 'उ' का आकार मुख बंद होने की तरह है । 'औ' में दो मात्राएँ मुख के दोनों जबड़ों के संचालन के समान हैं ।

◆ स्वरों की ध्वनियों की वैज्ञानिकता यह है कि बच्चा पैदा होने के बाद स्वरों के उच्चारण क्रम में ही होते हैं ।

◆ स्वरों के उच्चारण में हवा कंठ से निकल कर उच्चारण स्थानों को

बिना स्पर्श किये, बिना अवरूध्द हुए, ध्वनि करती हुई मुख से बाहर निकलती है ।

◆ व्यंजनों के उच्चारण में हवा कंठ से निकलकर उच्चारण-स्थानों को स्पर्श करती हुई या घर्षण करती हुई, ध्वनि करती हुई, ओठों तक होती हुई मुख या मुख और नासिका से बाहर निकलती है । इस प्रकार स्वरों तथा व्यंजनों में ध्वनि उत्पन्न करने की प्रक्रिया में भिन्नता है । अत: सिध्दांतत: स्वरों तथा व्यंजनों का वर्गीकरण पृथक-पृथक होना ही चाहिए । देवनागरी लिपि में इसी वैज्ञानिक आधार पर स्वर और व्यंजन अलग-अलग वर्गीकृत किये गये हैं ।

◆ व्यंजनों को उच्चारण-स्थान के आधार पर कंठ्य, मूर्ध्दन्य, दन्त्य तथा औष्ठ्य-इन पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया गया है । कंठ से लेकर ओठों तक ध्वनियों का ऐसा वैज्ञानिक वर्गीकरण अन्य लिपियों में उपलब्ध नहीं है । उक्त वर्गीकरण ध्वनि-विज्ञान पर आधारित है ।

◆ देवनागरी लिपि में अनुनासिक ध्वनियों के उच्चारण में भी वैज्ञानिकता है, क्योंकि शब्दों के साथ उच्चारण करने पर अनुनासिक ध्वनियों में अन्तर आ जाता है, इसलिए व्यंजनों के प्रत्येक वर्ग के साथ, वर्ग के अंत में उसका अनुनासिक दे दिया गया है ।

◆ देवनागरी लिपि में ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं में स्पष्ट भेद है । उनके उच्चारण में कोई भ्रम की स्थिति नहीं है । अन्य लिपियों में ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं के उच्चारण की ऐसी सुनिश्चितता नहीं है । अंग्रेजी में तो वर्णों से ही मात्राओं का काम लिया जाता है । वहाँ ह्रस्व और दीर्घ में कोई अंतर नहीं है, मात्राओं का कोई नियम नहीं है ।

बहरहाल, सरकारी संस्थानों में संगोष्ठियों का आयोजन स्वागतयोग्य है । इसके मूलत: तीन कारण मेरे विचार में हैं । पहला, कार्यालयीन कामकाज में तल्लीन व्यक्ति को वैचारिक धरातल पर कुछ सुनने- समझने और सोचने-विचारने के अवसर मिलते हैं । यह उसकी मस्तिष्कीय सक्रियता को बढ़ाता है और सुषुप्त पड़ी रचनात्मक प्रतिभा को सामने लाने में सहायक होता है । दूसरा कारण, विचारवान व्यक्तियों से परिवार व समाज विचारवान होता है । आखिरी वजह बुनियादी भी है । भारत सरकार की राजभाषा नीति के क्रियान्वयन की दिशा में यह एक सशक्त गतिविधि है । उम्मीद है, सशक्त संगोष्ठियों के आयोजन का सिलसिला सरकारी कार्यालयों और विभागों में बढ़ेगा। पर यह आवश्यक है कि हम किसी भी भारतीय भाषा को उसी लिपि में लिखें और लिखने को तरजीह दें जो उस भाषा के लिए बनी हुई है । रोमन लिपि के प्रति आकर्षण अंतत: हमें अपनी जड़ों से अलग ही करेगा । आखिर में एक बात । ज्यों-ज्यों हमारे देश में हिन्दी और दूसरी भाषाओं को हल्के में लिए जाने का षडयंत्र बढ़ेगा, त्यों-त्यों इन भाषाओं के जानकारों का वर्चस्व बढ़ेगा । अच्छी हिन्दी-शुध्द हिन्दी, अच्छी मराठी-शुद्ध मराठी, अच्छी गुजराती-शुध्द गुजराती लिखने-बोलने वालों की तूती बोलेगी ।

साभार : भाषा संकल्प

-डॉ. अमरीश सिन्हा
ए-103, सच्चिदानंद रहेजा कॉम्पलेक्स
मालाड (पूर्व), मुंबई-400097

पृष्ठ संख्या 35 का शेष

◆ पाठ्यक्रम में व्यावहारिक विषयों का समावेश करने का सुझाव देकर शिक्षा के एकांगीपन को समाप्त किया।

◆ आयोग के नियमों व सुझाव के माध्यम से जीवन और शिक्षा में निकट का संबंध स्थापित हो सका।

◆ आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप स्त्री शिक्षा, मुस्लिम शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा निम्न जातियों आदि के शिक्षा विकास में सहायता मिली।

दोष

◆ भारतीय शिक्षा आयोग के सुझाव में मौलिकता की कमी थी।

◆ आयोग ने प्राथमिक शिक्षा का दायित्व स्थानीय संस्थाओं के ऊपर डाल दिया, किन्तु इन संस्थाओं के पास धन का अभाव था। ऐसी स्थिति में जनसाधारण की शिक्षा की व्यवस्था करना संभव नही था।

◆ आयोग ने प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा के लिए कोष निर्माण का सुझाव दिया किन्तु धनराशि का अनुपात निश्चित नही किया।

◆ सुझाव के अनुसार विद्यालयों के लिए प्रांतीय सरकारों से भी पर्याप्त सहायता देने की सिफारिश थी किन्तु मात्रा निश्चित न होने के कारण सरकारों ने लाभ उठाया।

◆ शिक्षा के क्षेत्र से सरकार का दायित्व न रहने के कारण व्यक्तिगत विद्यालयों में शिक्षा का विकास संख्यात्मक रूप से तो बढ़ा, किन्तु गुणवत्ता में निरंतर गिरावट आने लगी।

◆ व्यावसायिक शिक्षा की ओर ध्यान केंद्रित नहीं किया गया।

◆ ब्रिटिश कालीन शिक्षा राष्ट्र के प्रतिकूल रही।

इस प्रकार समय और शासन के अनुकूल शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित होता रहा। ब्रिटिश कालीन शिक्षा के विकास के लिए सरकार द्वारा अनेक प्रयास किए गए आयोग का गठन किया गया। भारतीय शिक्षा आयोग के सुझाव के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा में सुधार के प्रयास किए गए।

माध्यमिक शिक्षा में भी परिवर्तन किए गए। इसे दो भागों में बाँट कर शिक्षा को बेहतर करने का प्रयास किया गया। निजी क्षेत्रों को भी प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा में सम्मिलित होने का अवसर दिया गया। अंतत: हंटर कमीशन के सुझावों को स्वीकार किया गया।

-डॉ. विनीता शुक्ला
ब्लॉगर, लेखिका, कवयित्री
पूर्व सहायक प्राचार्य, एमिटी विश्व विद्यालय, लखनऊ

"देश को एक सूत्र में बांधे रखने के लिए एक भाषा की आवश्यकता है ।"
-सेठ गोविन्ददास

अवधी लोकगीतों का शब्द सामर्थ्य

डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय

भाषा का वास्तविक सामर्थ्य सही अर्थों में केवल लोकभाषाओं में ही दिखाई पड़ता है । लोकभाषाओं में रचित लोक साहित्य के विभिन्न पक्षों में यह सामर्थ्य देखा जा सकता है । चाहे वह लोकगीत हो, लोक कथाएँ हों, कहावतें हों, लोक नाट्य हो इन सबमें भाषा की शक्ति का भरपूर निदर्शन हुआ है । इनमें जिन शब्दों, उपमाओं का उपयोग हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है । जहाँ तक लोकगीतों के शब्द सामर्थ्य का प्रश्न है, इनमें अत्यंत दुर्लभ शब्दों का प्रयोग हुआ है और वे कोई एक दिन के बने शब्द नहीं हैं बल्कि उनकी एक सुदीर्घ यात्रा रही है । ये शब्द लोकानुभव से निसृत हैं तथा अपने भीतर लोक जनजीवन की परंपरा और उसकी थाती को समेटे हुए हैं । उसकी व्यथा-कथा को अपने भीतर सँजोए हुए हैं, मसलन एक गीत देखें जिसमें एक बेटी कह रही है कि उसके माता-पिता ने उसका विवाह ऐसे निर्जन और बियावान वन में कर दिया है जहाँ बाघ भी एक बार जाने से डरे । सींक तक नहीं डोलती है । अब जरा इस पंक्ति पर विचार करें कि क्या उस बेटी का विवाह वास्तव में किसी वन में हुआ है, नहीं ; बल्कि गीत की व्यंजना में धँसना पड़ेगा तो अर्थ निकलेगा कि, मैं मानो ऐसे बियावान में हूँ जहाँ बाघ भी आने से डरता है, मनुष्य की तो बात ही क्या ? तो क्या उसकी ससुराल बियावान है ? नहीं, किन्तु उसके माता-पिता तो मानो उसे बियावान जंगल में छोड़ आये हों जहाँ वे उसकी सुध-बुध तक लेने नहीं जाते कि वह जी रही है कि मर रही है, जरा गीत की धार देखें-

जौने बन सिंकिया न डोलइ, बघवा न ठनकइ हो,
बहिनी ओहिं बन माया हमरी बियहीं उलटि नहिं चितवइँ हो।

अब उसका प्रश्न यह है कि क्या मैं किसी घनघोर वन में रहती हूँ कि जहाँ मेरे माँ-बाप मेरी खबर तक नहीं ले सकते ? और यदि यहाँ आने में उन्हें इतनी दिक्कत है तो फिर ऐसी जगह उन्होंने मेरा विवाह ही क्यों किया ? यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है । दरअसल विवाह के बाद माता-पिता बेटी की तरफ निश्चिन्त हो जाते थे मानों उन्होंने गंगा नहा लिया हो । उस दौर में बेटी का विवाह कर पाना महाभारत था, दहेज आदि की समस्याओं से माता-पिता व्यथित रहते थे । वे रातभर रोते थे । अवधी के एक विवाह गीत में माता-पिता के इन अश्रुओं की तुलना नीम की नीर से की गई है जो रात भर झरती है-

नीर चुवत हैं, नीर चुवत हैं, निरिया चुवै सारी रात ।
बपवा कवने रामा कइसे नींद लगत हैं, जेहिं घर बेटी कुआंरि॥

इसीलिए बेटी का विवाह करने के बाद पिता कहता था कि- आज हमहूँ गंगा नहाइ लीन । उसका पिता और भाई बेटी की ससुराल इसलिए नहीं जाते थे कि सबकी गोड़धराई करनी पड़ेगी, कपड़ा-लत्ता ले जाना पड़ेगा अन्यथा सास-ननद ताना मारेंगी । इसलिए वे प्राय: नहीं ही जाते थे, जब इतनी व्यवस्था बनेगी तभी तो वह जायेगा । यह गीत उस दौर के समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र को भी उद्घाटित कर देता है । बेटी की पीड़ा 'सिंकिया न डोलइ' और 'बघवा न ठनकइ' पद से गहरी व्यंजना को प्राप्त हुई है । इससे उसके दु:ख की सघनता उजागर हुई है । अवधी लोकगीतों में ऐसे बहुत से पद हैं, शब्द हैं, उपमान हैं जिनमें गहरी व्यंजनानुभूति विद्यमान है । मसलन, अवधी के एक सोहर गीत में सीता राम के लिए कहती हैं कि-

जइसे करहिया में तेल जलै, उबलिख़उबलि जलै हो ,
रामा ओइसे जलै मोरा जियरा, सपनवाँ न चित मिलै हो ।

और भी-

का येस रामा के घर रहे का मधुबन रहे हो,
रामा येक्कउ अहकिया न पुरये अजोधिया में रहि केहिं हो।

अर्थात, जइसे कंता घर रहे, ओइसे रहे बिदेस की अर्थध्वनि है यहाँ । राजस्थानी में भी कहावत है-

पिव पासै सूता थकां, हेज नहीं लवलेस ।
जैसो कंथो घर रह्यो, तैसो गयो बिदेस ॥

अवधी के कई गीतों में एक पद आया है कि- 'होत बिहान लोह लागत' । दरअसल लोह लगने का तात्पर्य है- एकदम तड़के, अलहसुबह, पौ फटते ही । किन्तु लोह लगने में जो सघन अर्थ ध्वनि निकलती है वह अन्य शब्दों से नहीं आ सकती है । अवधी में कहावत भी है- ये हमें लोह लागि जाये । यानी अत्यंत दुष्कर कार्य जिसे संपन्न करना बहुत ही कठिन हो । और भी देखें- अवधी के ही एक सोहर गीत में सन्दर्भ आता है कि ननद अपनी आसन्न प्रसवा भाभी को ताने मारती है कि भाभी तुम संतान का मुंह नहीं देखोगी, और यदि संतान हुई भी तो बेटा तो एकदम नहीं होगा । भाभी को बड़ी पीड़ा हुई किन्तु दैवगति से अगले दिन बड़े सुबह ही लड़के ने जन्म लिया और ननद और सास अपने किये पर झेंप गयीं । अब वही ननद भतीजे की छट्ठी में सोने का कंगन मांग रही है और 'एक गोड़' पर नाच रही है- अब एक गोड़े नाचा थै ननदिया, कँगन भउजी लेबइ हो ।। अब एक गोड़े नाचना, नाचने की पराकाष्ठा है, यह अत्यंत हर्षित होने की अभिव्यक्ति है । एक पैर पर खड़े होकर पहले ऋषि-मुनि तपस्या करते थे, यह उनकी कठिन परीक्षा का प्रमाण था। एक और गीत देखें जिसमें वनवास को जाती हुई सीता राम से कहती हैं कि- 'सोन चिरइया येस जियायेन मोतिया चुगायेनि हो, अब जरा इन शब्दों का अर्थ गाम्भीर्य देखें- सीता ने कहा कि मेरे सास, ससुर ने मुझे सोने की चिड़िया की तरह रखा है और मुझे उत्तम से उत्तम भोजन सामग्री खिलाई है, भला ऐसे

सास-ससुर को अकेला छोड़कर मैं वन कैसे जा सकती हूँ ? अब प्रश्न यह है कि क्या उस समाज में सभी सास-ससुर अपनी बहू को सीता की तरह ही रखते थे ? नहीं । यहाँ दशरथ और कौशल्या का आदर्श प्रस्तुत किया गया है और साथ ही सीता जैसी बहू का भी आदर्श प्रस्तुत किया गया है । मानस में भी प्रसंग आया है कि कौशल्या कहती हैं कि ऐसी सीता जिसको मैंने संजीवनी की तरह पाला है और दीपक की बाती तक भी हटाने को नहीं कहा है, वह घनघोर वन में कैसे रहेगी ?

जिअन मूरि जिमि जोगवत रहहूँ ।
दीप बाति नहिं टारन कहहूँ ॥

अब अवधी का ही एक अन्य सोहर गीत देखें जिसमें निष्कासित सीता को आश्वस्त करते हुए वन की वन तपस्विनियाँ कहती हैं कि- सीता हम तोहरी जगबै सउरिया, त रतिया बिपति कै न हो ।। यह जो बिपत्ति की रात्रि है, यह प्रसव की रात्रि है और यह स्त्री जीवन की सबसे कठोर रात्रि होती है जिसमें उनके प्राण का संकट रहता है । अवधी लोक में कहावत है कि- लड़िका पैदा भये पे दूसर जनम होथै ।। यह असहनीय वेदना का क्षण होता है । तुलसी ने इस पीड़ा का उल्लेख करते हुए मानस में लिखा कि- बाँझ कि जान प्रसव की पीरा ।। यह पीड़ा बाँझ नहीं समझ सकती क्योंकि यह उसके अनुभव का हिस्सा नहीं होता है । इस पीड़ा की उपस्थिति के समय अपने पति के पास रहकर स्त्री को इसकी अनुभूति उतनी नहीं सालती जितनी उससे दूर रहने पर । और ऐसी विपत्ति में पति ने घर से निकाल दिया हो तो लोक ऐसे पति को चाहे वह राम ही क्यों न हों , उसे वह कटघरे में जरूर खड़ा करता है । इसलिए, प्रसव के उपरान्त नाई के हाथों अयोध्या रोचन भेजते हुए सीता उसे हिदायत देती हैं कि भूल से भी पुत्र जन्म का समाचार उस पापी राम को मत सुनाना-

पहिला रोचन राजा दशरथ, दुसरा कौंशिला रानी,
तिसरा रोचन लछिमन देवरा, पपियवा न जनायेउ हो ॥

अवधी का ही एक अन्य शब्द 'हकड़ौ' है जो कई गीतों में प्रयुक्त हुआ है । यह शब्द बुलाने के लिए प्रयुक्त हुआ है मसलन नाई को बुलाने के लिए कहा गया कि - 'हकड़ौ न नग्र के नउआ, बेगिहिं चलि आवहु हो ।। यह शब्द मूलत: हुंकार से बना है, हुँकारी शब्द भी बना है, हाँकना भी अवधी में जानवरों के लिए प्रयुक्त होता है । इसका मूल अर्थ है किसी को जोर से आवाज देकर बुलाना । अवधी में स्त्रियों को कहते हुए मैंने सुना है कि- का हकंडा मारत अहू ? क्योंकि उस समाज में यह छूट स्त्रियों को नहीं थी, पुरुष भले हकंडा मारें, गर्जना करें, हुंकार भरें किन्तु स्त्रियों से मधुर स्वर की अपेक्षा की जाती थी । रसवादी आचार्य मम्मट ने यों ही नहीं कह दिया था कि- कांतासम्मित उपदेश युजे ।। ये शब्द अपने समय और समाज की संस्कृति और उसके स्वभाव को और व्यवहार को अपने भीतर समेटे हुए हैं । हकड़ने से होकड़ना शब्द भी बना है । गाय-भैंस के लिए अवधी में कहा जाता है कि- का होंकरत अहू । चोकरत शब्द भी इसी का समानार्थी है- भइंसिया चोकरति ब्या ।। इसके अतिरिक्त 'मधुबन' शब्द का भी अवधी लोकगीतों में बहुत प्रयोग हुआ है । मधुबन सामान्य वन नहीं है बल्कि फल-फूलों से भरा हुआ सघन वन है । मानस के सुंदरकाण्ड में भी यह शब्द आया है-

जौ न होति सीता सुधि पाई ।
मधुबन के फल सकहिं कि खाई ॥

राम द्वारा सीता के निष्कासन प्रसंग में 'जेठइ कै दुपहरिया' शब्द का प्रयोग किया गया है । जेठ की दोपहर अत्यंत दारुण होती है, असहनीय होती है और ऐसी ही विकट ऋतु में राम ने आसन्न प्रसवा सीता को अयोध्या से निकाल दिया था । संभव है कि वह जेठ की दोपहरी न रही हो किन्तु लोक राम की निरंकुशता को अत्यंत सघन रूप में दिखाना चाहता है और सीता की यातना को गहराई देना चाहता है इसलिए उसने जेठ का चुनाव किया । यही नहीं अवधी लोकगीतों में ऐसे अनंत शब्द और उपमाएँ हैं जो अत्यंत मार्मिक एवं हृदयद्रावक हैं मसलन, एक बहन अपने भाई से अपनी यातना की व्यथा-कथा सुनाने के बाद कहती है कि, भैया इस दु:ख की गठरी को बड़ी मजबूती से बाँधना और जहाँ मन करे वहां इसे खोलकर रो लेना, घर तक मत ले जाना, अम्मा और बाबा को मत बताना-

ई दु:ख जिनि कह्या माई के अगवा हो ना,
ई दु:ख बान्ह्या भइया गहरी मोटरिया हो ना,
जहाँ खोलउ तहाँ रोयेउ हो ।

अवधी में गठरी-मोटरी शब्द प्राय: साथ-साथ ही प्रयुक्त होता है । संभव है कि मोटर से मोटरी शब्द बना हो । लोक ऐसे शब्दों की निर्मिति करता रहा है जो उसके भाव को अभिव्यक्त करने में न केवल समर्थ हों बल्कि वे सुनने वाले के मर्म का भी स्पर्श करें इसीलिए लोकगीतों में शब्द सामर्थ्य अपनी सम्पूर्णता में उपस्थित है जिसमें अर्थ की अनंत संभावनाएँ निहित हैं ।

डॉ. सत्यप्रिय पाण्डेय
लोकसाहित्य विमर्शकार
13/258, भूतल, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012 (उ.प्र)

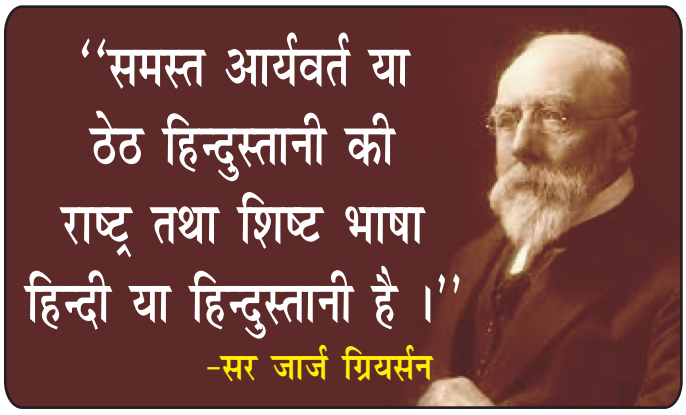

भाषा शिक्षण पर शिक्षकों का नजरिया

अक्सर शिक्षक चर्चा के दौरान बताते हैं कि कक्षा पाँच के बच्चे भी कहानी या कविता सुनाना, अपनी बात को बोलकर या लिखकर अभिव्यक्त करना, समझ कर पढ़ना आदि काम नहीं कर पाते हैं।ये सब बातें हमें सोचने को बाध्य करती हैं कि भाषा की कक्षा में ऐसा क्या होता है कि हमारे अथक प्रयासों के बावजूद बच्चों की विभिन्न भाषाई क्षमताएँ विकसित नहीं हो पातीं। सवाल यह है कि हम इसका कारण बच्चों की सामाजिक व आर्थिक पृष्ठ भूमि को मानें अथवा भाषा सीखने-सिखाने के तौर-तरीकों व उसमें निहित हमारे नजरिए को। पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न मौकों यथा कक्षा अवलोकन व प्रशिक्षणों के दौरान शिक्षकों के साथ हुई बातचीत में भाषा शिक्षण के प्रति उनके नजरिए के कई आयाम उभरकर आए। उनमें से कुछ की चर्चा हमने यहाँ इस लेख में करने की कोशिश की है।

भाषा माने क्या?

प्राय:शिक्षक 'भाषा माने क्या' का अर्थ बहुत सीमित अर्थों में लेते हैं। यह पूछे जाने पर कि भाषा से आप क्या समझते हैं जवाब होता है- भाषा यानी विचारों के आदान-प्रदान का माध्यहम अर्थात् 'सम्प्रेषण का साधन'। इस बात पर कभी गौर नहीं किया जाता कि जिन विचारों को सम्प्रेषित करना है वे कहाँ से व कैसे आते हैं? दूसरे शब्दों में क्या भाषा के बगैर हम सोच सकते हैं? कल्पना कर सकते हैं? चीजों को अलग-अलग पहचान सकते हैं, उनका वर्गीकरण कर सकते हैं? विश्लेषण कर सकते हैं? हम भाषा का उपयोग कहाँ-कहाँ करते हैं? कैसे करते हैं? हमारा व भाषा का रिश्ता क्या है? यदि इन पहलुओं के बारे में गहराई से सोचा जाए तो यह सूची और लम्बी होती जाएगी। उदाहरण के लिए यदि किसी नए व्यक्ति से मिलते हैं, उससे 4-5 मिनट बात करने के दौरान ही हमें पता चल जाता है कि अमुक व्यक्ति पंजाबी है, बंगाली अथवा गुजराती....। यानी इंसान के व्यक्तित्व, उसकी पहचान, उसकी क्षमताओं का विकास इत्यादि सभी बातें भाषा से जुड़ी हुई हैं। इसका अर्थ यह है कि हममें से अधिकांश लोग जो मानते हैं कि भाषा यानी 'सम्प्रेषण का माध्यम', कुछ हद तक ही ठीक है। जाने-माने शिक्षाविद् कृष्ण कुमार ने अपनी पुस्तक 'बच्चों की भाषा और अध्यापक' में कहा है: 'हममें से कई लोग भाषा को सम्प्रेषण का साधन मानने के इतने ज्यादा आदी हो चुके हैं कि हम सोचने, महसूस करने और चीजों से जुड़ने के साधन के रूप में भाषा की उपयोगिता को अक्सर भूल जाते हैं। भाषा के उपयोग का यह बड़ा दायरा उन लोगों के लिए बेहद महत्वपूर्ण है जो छोटे बच्चों के साथ काम करना चाहते हैं। लेकिन भाषा का यह सीमित अर्थ भी कक्षा तक आते-आते कहीं गुम हो जाता है और उसे एक ऐसे विषय के रूप में पढ़ाया जाता है जिसके द्वारा बच्चों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा दी जा सके ।

सम्प्रेषण के अर्थ के हिसाब से देखें तो भी कम से कम बच्चों को कक्षा में अपनी बात कहने, दूसरों की बात सुनने, प्रश्न उठाने, तर्क करने इत्यादि की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। पर कक्षाओं में तो यह नहीं होता। कक्षा में जो होता है वह है: अध्यापक जो कहे उसको बिना विचारे सुनना, पाठ्यपुस्तपक के अध्यायों के पीछे दिए गए अभ्यास के प्रश्नों के 'सही' उत्तर याद करके उनको हूबहू परीक्षा में वैसा ही लिखना। इसके लिए तो पाठ्य पुस्तक की आवश्यकता ही नहीं होती। उत्तर याद करने के लिए बच्चे कुँजियों का सहारा लेते हैं और इसी वजह से कुँजियों का बाजार चलता है। यह थी सम्प्रेषण की बात जो कि वास्तव में होती ही नहीं। तो बाकी अन्य पहलुओं का क्या हो यह हमें सोचना होगा। इसी से सम्बन्धित दूसरा बिन्दु है भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्य व प्रक्रिया। किसी भी विषय को सीखने-सिखाने के उद्देश्य सीधे इस बात से जुड़ते हैं कि हमारी उस विषय की समझ क्या है? विषय की समझ न केवल यह निश्चित करने में मदद करती है कि हमें पढ़ाना क्या है वरन् यह भी निर्णय लेने में मदद करती है कि पढ़ाना कैसे है? चूँकि शिक्षकों की 'भाषा क्या है?' इस प्रश्न की समझ सीमित है, यही समझ भाषा शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करने में भी परिलक्षित होती है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्य हैं:

- ध्वनि रूपों के शुद्ध उच्चारण को समझना।
- शब्दों के शुद्ध उच्चारण को समझना।
- ध्वनि रूपों का उच्चारण करना।
- शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना।
- वर्ण पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- शब्द पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- वर्णों और शब्दों को उचित आकार, उचित क्रम में लिखने की क्षमता विकसित करना। (सुन्दर लिखावट)
- विराम चिह्नों का प्रयोग करते हुए लिखने की क्षमता विकसित करना।
- वाक्य पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- व्याकरण का सटीक उपयोग।
- नैतिक मूल्यों का विकास करना भी भाषा शिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य होता है।

पाठ्यपुस्तक निर्माण और भाषा सीखने-सिखाने के तौर-तरीके भी इन्हीं उद्देश्यों पर आधारित होते हैं। फलस्वरूप भाषा की कक्षा सिर्फ वर्ण, शब्द, वाक्य बोलना, पढ़ना, लिखना सिखाने पर केन्द्रित होकर रह जाती है। न तो उसमें कविताओं व कहानियों के

लिए कोई स्थान होता है न बच्चों को बातचीत के मौके होते हैं और न अपनी बात को अभिव्यक्त करने के। चाहे वह मन से लिखना हो अथवा कहना।

भाषा तथा भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों को लेकर शिक्षकों के नजरिए की बात हमने की। इसके अलावा भी कई दृष्टिकोण हैं जो शिक्षकों से बातचीत के दौरान परिलक्षित भी होते हैं, जैसे - भाषा टुकड़ों-टुकड़ों में व चरण दर चरण सीखी जाती है।शिक्षक भाषा को एक समग्र रूप में देखने की बजाय टुकड़ों-टुकड़ों में देखते हैं। वे मानते हैं कि भाषा टुकड़ों-टुकड़ों को जोड़कर सीखी जाती है। चाहे ये टुकड़े फिर सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने के हों अथवा अक्षर, मात्रा, शब्द व वाक्य। यदि हम फिर से उद्देश्यों पर जाएँ और उनका गहराई से विश्लेषण करें तो उनमें भी यह विभाजन साफ-साफ दिखाई देता है, जैसे-

- पहले बच्चों को ध्वनियों का उच्चारण समझना सिखाना है।
- फिर साफ व स्पष्ट बोलना
- उसके बाद अक्षर व वर्ण पढ़ना और उसके बाद लिखना।

शिक्षकों के अनुसार भाषा सिखाने का तात्पर्य है; सुनना, बोलना, पढ़ने व लिखने का कौशल का विकास। उनके अनुसार इन कौशलों के विकास की प्रक्रिया कुछ ऐसी होती है: यद्यपि बच्चा अपने आसपास हो रही बातचीत को सुनता रहता है लेकिन भाषा वह माँ से ही सीखता है। माँ बार-बार बच्चे को सुनाने के लिए बोलती है, जैसे - बोलो 'माँ', 'माँ' और बार-बार भी ध्वनि से परिचय होने के फलस्वरूप बच्चों 'माँ' शब्द सीख जाता है और 'माँ' बोलना शुरू करता है। इसी तरह उसको अन्यल ध्वनियों पापा, दादा इत्यादि से परिचय करवाया जाता है। और फिर वह ये शब्द भी बोलने लगता है। ये शब्द छोटे व सरल होते हैं अत: बच्चा जल्दी सीख जाता है। फिर बारी आती है लम्बे व कठिन शब्दों व वाक्यों की। माता-पिता व रिश्तेदार बार-बार इन शब्दों को बच्चे के सामने दोहराते हैं। इसी तरह बच्चा शब्द व वाक्य बोलना सीख जाता है। उनका यह दृढ़ विश्वास होता है कि बच्चा बगैर सुने नए शब्द व वाक्य बोल ही नहीं सकता। यानी पहले सुनने की प्रक्रिया होगी फिर बोलने की। पढ़ने व लिखने की प्रक्रिया भी कुछ इस तरह ही होती है। पढ़ने का मतलब होता है अक्षरों को पहचानना और ध्वनियों का उच्चारण कर पाना और इसीलिए बच्चे पढ़ने के नाम पर वर्णमाला को रटते रहते हैं, कविताओं व कहानियों को शब्दश: दोहराते रहते हैं।

लिखना भी एक स्वतन्त्र कौशल की तरह मशीनी ढंग से सिखाया जाता है। बच्चों को अक्षरों की नकल के लिए कहा जाता है। शब्दों की नकल करवाई जाती है। सोचें, कि यदि हमें किसी एक ही काम को बार-बार करने को दिया जाए तो कैसा महसूस करेंगे। लेकिन शुरुआती एक साल में भाषा-शिक्षण के नाम पर बच्चे यही कवायद करते रहते हैं। इन चारों कौशलों को अलग-अलग देखने की वजह से ही शिक्षण प्रक्रिया बोझिल उबाऊ व बार-बार रटने वाली हो जाती है। जैसे यह सब एक-दूसरे से अलग-अलग प्रक्रियाएँ हों। इसी तरह क्या अक्षर व शब्दों को पढ़ना-सीखना लिखने की प्रक्रिया में कोई योगदान नहीं देता? इन प्रश्नों के बारे में कोई विचार नहीं करता। यदि पढ़ना व लिखना बच्चों के अनुभव व बातचीत से शुरू होगा तो वह बच्चों के लिए अर्थपूर्ण होगा। शिक्षकों के अनुसार तो भाषा सीखने की प्रक्रिया कुछ इस तरह होती है: माता-पिता बोलते हैं मामा, पापा अथवा कोई अन्य शब्द, तो पहले बच्चे कई बार इस शब्द को सुनते हैं और फिर एक दिन बोलना शुरू करते हैं। इसी तरह वे एक-एक करके शब्द सीखते हैं और फिर शब्दों को मिलाकर वाक्य। भाषा को टुकड़ों-टुकड़ों में पढ़ाने का एक उदाहरण देखिए:

शिक्षक कक्षा में आए व बच्चों को डाँटकर चुप कराया। शिक्षक ने बोर्ड पर वर्णमाला के कुछ अक्षर यह बताने के लिए लिखे कि अक्षर से शब्द का निर्माण कैसे होता है और शब्द से वाक्य कैसे बनते हैं।

घ, र, च, ल, अ, ब, न, भ। घर, चल-घर चल
अ, म, न, घर, चल-चरण घर चल

उसके बाद शिक्षक ने बोर्ड पर लिखी वर्णमाला के अक्षर व अक्षर से बने शब्द और शब्द से बने वाक्यों को बच्चों द्वारा पढ़वाया। वह प्रत्येक बच्चे को बोर्ड पर बुलाते और बोर्ड पर लिखे हुए को पढ़वाते और साथ में अन्य बच्चों से उन शब्दों को दोहराते। इस प्रकार पीरियड चलता रहता है। पूरी प्रक्रिया अक्षरों व शब्दों की पहचान पर ही केन्द्रित रहती है और इनकी पहचान पर इतना जोर होने से वाक्य का अर्थ ही गुम हो जाता है। उन बच्चों को जो कि अच्छी तरह से भाषा का प्रयोग कर सकते हैं 'आ', 'इ' व अन्य भी मात्राओं वाले नए-नए वाक्य जानते हैं और बनाते भी हैं, उनको इस तरह तोड़-तोडकर भाषा सिखाना कहाँ तक उचित है, और तो और इस नजरिए का सीधा सम्बन्ध विषयवस्तु से भी होता है। पढ़ाने के लिए विषयवस्तु भी ऐसी ही चुननी होती है जो चरण दर चरण ही आगे बढ़े। फलस्वरूप विषयवस्तु सिर्फ अक्षरों, शब्दों जैसे पहले कमल फिर कमला फिर कमली और वाक्य रतन घर चल, नल पर चल सरपट करके इर्दगिर्द सिमट कर रह जाती है।

ऐसी विषयवस्तुत, जो न तो बच्चों के अनुभवों से जुड़ी हुई है, जिसका न कोई अर्थ है न ही वह रुचिपूर्ण है आवश्यक है फिर भी बच्चे पढ़ते रहते हैं।

भाषा व बोली

एक और महत्वपूर्ण मसला है भाषा व बोली का। जिस भी मंच पर भाषा-शिक्षण की बात होती है, यह मसला जरूर उठता है। शिक्षक बच्चों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को दूसरे दर्जे की समझते हैं

क्योंकि उनका मानना है कि भाषा तो वह होती है जिसका अपना साहित्य व व्याकरण होता है, उसकी लिपि होती है, वह मानकीकृत व शुद्ध होती है। बच्चे जो भाषा अपने घर से लेकर आते हैं वह तो भाषा नहीं है क्योंकि वह तो एक क्षेत्र विशेष के लोगों द्वारा बोली जाती है, उसका न तो साहित्य है न व्याकरण न लिपि। अत: स्कूल के पहले दिन से ही बच्चों को मानकीकृत और शुद्ध भाषा सिखाने का प्रयास किया जाता है और यदि बच्चे अपनी घरेलू भाषा का प्रयोग विद्यालय में करते हैं तो उन्हें डाँट दिया जाता है। बच्चे यह समझ नहीं पाते कि उन्हें क्यों डाँटा जा रहा है ? घर में आस-पास परिवेश में हर कहीं वही भाषा बोली जाती है पर स्कूल में अध्यापक के सामने जब वे बोलते हैं तो गलत क्यों हो जाते हैं। बात यहीं खत्म नहीं होती। जैसे कि हमने पहले भी बात की। भाषा व्यक्ति की संस्कृति व पहचान होती है। बच्चे द्वारा अपनी घरेलू भाषा का उपयोग न करने देना उसकी पहचान व संस्कृति पर सीधा प्रहार है। बार-बार डाँट खाने के कारण जो बच्चे इतनी बातचीत करते हैं, धीरे-धीरे बात करना ही बन्द कर देते हैं। यदि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो भाषा व बोली में कोई फर्क नहीं होता। भाषा का भी व्याकरण होता है, बोली का भी। यह बात जरूर है कि वह व्याकरण लिखित रूप में उपलब्ध नहीं होता पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्याकरण होता ही नहीं। यही बात साहित्य पर भी लागू होती है। हो सकता है कि कई बोलियों (भाषाओं) में लिखित साहित्य न हो लेकिन मौखिक साहित्य जरूर होता है। दूसरा भोजपुरी, अवधी, मैथिली जिन्हें हम बोलियाँ कहते हैं उनमें तो बहुत साहित्य उपलब्ध है। भाषा का क्षेत्र विस्तृत है अथवा बोली का? - यह आप सोचिए कि हिन्दी भाषी लोग ज्यादा हैं अथवा भोजपुरी । और जो भी लोग हिन्दी बोलते हैं वे कितनी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं। रही लिपि वाली बात तो दुनिया की किसी भी भाषा को किसी भी लिपि में लिख सकते हैं उदाहरण के लिए-

Ram Ghar Jata hai
राम घर जाता है

हिन्दी भाषा को आप रोमन लिपि में लिख सकते हैं। और आजकल तो मोबाइल, कम्प्यूटर सभी पर हम यही करते हैं। अँग्रेजी भाषा को आप देवनागरी में लिख सकते हैं।

राम इज गोइंग
Ram is going

अध्यापक यह मानते हैं कि एक भाषा दूसरी भाषा सीखने में बाधक होती है। उदाहरणार्थ यदि बच्चा मेवाड़ी (क्षेत्रीय भाषा) जानता है तो उसका नकारात्मक प्रभाव उसके हिन्दी (मानकीकृत भाषा) सीखने पर पड़ेगा। लेकिन होता इसका उल्टा है। भाषा शिक्षा के द्वारा हम बच्चे की जिन क्षमताओं को विकसित करना चाहते हैं यथा सोचने-विचारने, अपनी बात कहने, तर्क करने, विश्लेषण करने वो तो उनकी अपनी भाषा में आसानी से विकसित हो सकती है और फिर यह कौशल दूसरी भाषा में स्थानान्तरित किया जा सकता है। रही उच्चारण व मानकीकृत भाषा की बात तो उपयुक्त सन्दर्भ व वातावरण मिलने पर बच्चे स्वयं ही धीरे-धीरे यह सब सीख जाते हैं।

भाषा नकल से सीखी जाती है

शिक्षकों की एक और मान्यता है कि बच्चे भाषा तब सीखते हैं जब उन्हें वह भाषा सिखाई जाती है। ऐसी कक्षा का एक उदाहरण देखिए:

कक्षा एक में बच्चे बैठे हुए हैं। प्रथम क्लास लगता है। शिक्षिका कक्षा में आती है व कुर्सी पर बैठ जाती है। थोड़ी देर बाद बच्चों से कहती है चलो अपनी-अपनी स्लेट या कॉपी लेकर मेरे पास आओ। हम हिन्दी पढ़ेंगे। बच्चे एक-एक करके अपनी स्लेट या कॉपी लेकर उनके पास जाते हैं। वह बच्चे की स्लेट पर 3-4 कॉलम बनाती हैं व एक कोने में 'अ' लिखकर बच्चे से कहती हैं ऐसे ही और बनाओ। इसी तरह वह कक्षा के सभी बच्चों को एक-एक वर्ण लिखने को देती हैं, जब बच्चे दिए गए वर्ण को लिख लेते हैं तो वह दूसरा वर्ण लिखने को देती हैं। इसी तरह कक्षा में कार्य चलता रहता है। इस पूरे समय में एक बार कुछ ऐसा हुआ जो हटकर था। वह था बार-बार शिक्षिका द्वारा वर्ण लिखकर लाने को कहने पर एक बच्चे ने उनसे कहा मुझे नहीं लिखना है। कुछ और कराओ। लेकिन शिक्षिका के पास कुछ और कराने को नहीं था। अत: उन्होंने एक नया वर्ण फिर से बच्चे को लिखने के लिए दे दिया। अब इस बात पर गौर करें कि भाषा सीखने की प्रक्रिया के दौरान बच्चे तुतलाते हैं। क्या हम उन्हें तुतलाना सिखाते हैं? वयस्क तो तुतलाकर बोलते नहीं ताकि बच्चों को उनकी नकल करने का मौका मिले व बच्चे वैसा बोलना सीखें। बच्चे नित नए शब्द व वाक्य बनाते हैं क्या हम प्रत्येक वाक्य को उनके सामने बोलते हैं? ताकि वे उसकी नकल कर सकें और सीख सकें। क्या हम कभी बच्चे को बोलते हैं, 'पापा मुझे मोटर साइकिल पर घूमने जाना है।'

'पापा चॉकलेट खानी है।'

एक बच्ची व वयस्क की बातचीत का उदाहरण देखिए:

मेरे दोस्त की बच्ची (तीन साल) व उसकी बुआ बातचीत कर रहे थे।

बुआ: बोलो, मैं अच्छी हूँ।
बच्ची : मैं अच्छी हूँ ।
बुआ: मैं लड़की हूँ ।
बच्ची : मैं लड़की हूँ ।
बुआ: मैं गन्दी हूँ ।
बच्ची : आप गन्दी हो।

अब आप ही सोचिए। इस बच्ची को कैसे पता चला कि उसे अपने-आप को गन्दा नहीं कहने के लिए वाक्य में कहाँ व

क्या-क्या परिवर्तन करने होंगे? वह यह कहना कैसे सीखी होगी नकल से अथवा आपके बताने से अथवा.... ?

भाषा सिखाने का एकमात्र साधन पाठ्य पुस्तक है !

बच्चों को सिर्फ पाठ्यपुस्तक में दी गई विभिन्न रचनाओं को पढ़ना है और वह भी दिए गए क्रम में यानी पहले अध्याय एक की, फिर दो.. तीन। बच्चे अपनी इच्छा से चुनकर पाठ भी नहीं पढ़ सकते। पाठ पढ़ने के बाद होता है उसके पीछे दिए गए प्रश्नों के उत्तरों को याद करना। बच्चों के इर्द-गिर्द भाषाई सन्दर्भ उपलब्ध हैं। उदाहरण के तौर पर पत्रिकाओं, अखबारों, विज्ञापनों में, सड़कों पर लिखे गए विभिन्न निर्देश इत्यादि। इनमें कई जगहों पर भाषा का प्रयोग होता है लेकिन इन पर किसी का ध्यान नहीं जाता। इसके बाद आती है साहित्य की बात। भाषा के वृहद् साहित्य विशेषकर बच्चों की उम्र के लायक साहित्य से उनका कोई परिचय नहीं होता। कक्षा-कक्ष अवलोकन के दौरान एक अनुभव को यहाँ बाँटना चाहेंगे। हमने बच्चों से पूछा कहानी सुनोगे या कविता? उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। अत: हमने एक कहानी सुना दी। दूसरे दिन फिर उसी कक्षा में जाने पर बच्चों ने कहा हमें कविता सुनाइए। कविता सुनाना शुरू किया तो उनका कहना था कल वाली सुनाइए। यह उदाहरण बताता है कि बच्चों को कहानियाँ और कविताएँ सुनने की बहुत इच्छा होती है। लेकिन क्योंकि हम साहित्य का कक्षा में अर्थपूर्ण उपयोग नहीं कर पाते हैं अत: उनकी रुचि खत्म हो जाती है। बच्चों को विभिन्नि कविताओं, कहानियों के मुख्य बिन्दुओं को याद करने का कार्य अरुचिकर व बोरिंग होता है और विशेषतौर पर तब जब यह उसके जैसा ही हो जो उनको पढ़ाया गया है। साहित्य के उद्देश्यों जैसे कि खुद को समझना और खुद का दुनिया के बारे में दृष्टिकोण बनाना और उसका संवर्धन करना इत्यादि कहीं गुम हो जाते हैं। कविता, कहानी की किताबें हो या अखबार अथवा सड़कों, विभिन्न स्थानों पर लिखे गए निर्देश इस तरह के सन्दर्भ न तो कक्षा में उपलब्ध होते हैं ना ही उनके बारे में सोचा जाता है। पाठ्यपुस्तक में कुछ जरूर मदद मिलती है लेकिन उसकी भी अपनी सीमाएँ होती हैं। अत: शिक्षक को यह सोचना होगा कि बच्चों में भाषा के प्रयोग की क्षमताएँ बढ़ाने के लिए उन्हैं पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त क्या-क्या करने की आवश्यकता है।

बच्चों की क्षमताओं में विश्वास

प्राय: शिक्षक यह मानते हैं कि बच्चों का सीखना स्कूल में ही प्रारम्भ होता है। स्कूल में आने से पहले बच्चों को कुछ नहीं आता। प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों से हुई बातचीत में उनका कहना था कि शहरी बच्चे तो फिर भी कुछ पढ़ना-लिखना जानते हैं लेकिन गाँव के बच्चे, गरीब बच्चे जिनके माता-पिता अनपढ़ हैं वे तो कुछ भी नहीं जानते। उन्हें तो सब कुछ स्कूल में आकर ही सीखना होता है। असल में भाषा शिक्षण की कक्षाओं का उद्देश्य है कि बच्चे अपनी बात को कह सकें, दूसरे की बातों को सुनकर या पढ़कर अपनी टिप्पणी दे सकें। वे कहानियों और कविताओं को पढ़कर उसका रस ले सकें, उन कहानियों और कविताओं में अपनी छवि देख सकें या अपने आपसे जोड़ सकें। भाषा सिखाने के केन्द्र लिपि, वर्तनी, सुन्दर लिखाई व व्याकरण बन जाते हैं। इतना ही नहीं भाषा की कक्षा में भाषा से खेलने, उसमें डूबने, उसे अहसास करने और आत्मासात करने का अवसर ही नहीं रहता है। असल में बात यह है कि यह सब कुछ करने के लिए स्कूलों में इतना धैर्य कहाँ, वे तो जल्द से जल्द। सिखाने में लगे रहते हैं। इसके अलावा शिक्षक का पूरा ध्यान कक्षा में बच्चों को शान्त करने और उच्चारण ठीक करने में रहता है। कक्षा-कक्ष में बच्चों को बातचीत करने से रोका जाता है। जबकि बच्चों की बातचीत कक्षा-कक्ष या अध्ययन-अध्यापन के लिए एक संसाधन बन सकता है। शिक्षक को यह अहसास ही नहीं है कि अगर बच्चों को छोटी-छोटी टोलियों में बाँटकर उन्हें किसी विषय-वस्तुं पर बातचीत का अवसर दिया जाए तो उससे काफी कुछ समस्या का समाधान ऐसे ही हो जाएगा। प्रत्येक बच्चा उसके परिवार में, उसके आसपास बोली जाने वाली भाषा के नियम सीख लेता है। चाहे वो नियम ध्वनि के हों, शब्द स्तर के हों अथवा बातचीत के। बच्चा केवल ये ही नहीं जानता है कि सही शब्द व वाक्य कैसे बोलना है बल्कि उसको यह भी पता होता है कि यदि प्रश्न वाक्य बनाना है तो उसे कहाँ लय में परिवर्तन करना पड़ेगा। वह जानता है कि उसे अपने पापा से किस तरह से बातचीत करनी चाहिए और यदि घर में अतिथि आएँ तो उनसे बातचीत का तरीका क्या होगा। इसके साथ-साथ बच्चे ये भी जानते हैं कि यदि उन्हें किसी से कुछ माँगना है तो उस व्यक्ति से किसी तरह की बातचीत की आवश्यकता है। बच्चों को यह सब कौन सिखाता है?

हमें लगता है कि भाषा की कक्षा में भाषा सिखाते समय दो-तीन बातों को अमल में लाएँ तो ज्यादा अच्छा होगा। पहली बात पढ़ने-लिखने की जो सामग्री हो वह सार्थक हो और बच्चे के स्तर की हो। दूसरी बात यह है कि जो सामग्री दी जाए वो परिचित भाषा में हो। तीसरी बात शिक्षक बच्चों के साथ सार्थक संवाद करें। उनकी बातों को प्यार से सुनें और उसे लोगों की बातचीत सुनने का मौका भी दें। ताकि वह अपने लिए कुछ व्याकरण के नियम और शब्द स्वयं से ढूँढ सकें। आखिरी बात यह है कि भाषा को अक्षर, उच्चारण, व्याकरण आदि में बाँटने से कोई मतलब नहीं निकलता है। ना ही ये सब किसी निश्चित क्रम में सीखे जा सकते हैं। भाषा सीखने का एक ही तरीका है उसका ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जाए। जैसे-बोलने में, तर्क करने में, कल्पना करने में, सृजन करने में। पढ़ने-लिखने इत्यादि के पर्याप्त अवसर मिलें तो भाषा सीखना कोई मुश्किल काम नहीं है।

साभार : टीचर्स ऑफ इण्डिया

रजनी द्विवेदी एवं शोभा शंकर नागदा

भाषाई एकात्मता की प्रतिनिधि बनी हिन्दी

डॉ. अरुण प्रकाश

भारत की भाषाई अवधारणा विश्वभर में अनूठी है । भाषा-विज्ञान की पाश्चात्य अवधारणा से अलग भारत की भाषा सम्बन्धी अवधारणा में एकात्म दृष्टि है और अंतर्भाषिक सम्बन्ध की स्वीकृति भी । भाषा की भारतीय अवधारणा ने भाषाओं के मध्य संगमन पर हमेशा जोर दिया है । विविध भाषाओं में एकत्व की धारणा के कारण ही निरुक्तकार यास्क ने वैदिक और लौकिक शब्दों की समानता के अंतर्गत अर्थ को स्थित माना है । शौनक ने भी अर्थ संधान की दृष्टि से वैदिक और लौकिक वचनों में सम्बन्ध मानते हुए कहा है कि जो वैदिक है उसे लौकिक बना लेना चाहिए । इस क्रम में संस्कृत ने न सिर्फ भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि भाषा के रूप में काम किया बल्कि भारतीय भाषाओं की व्याकरणिक व्यवस्था में सहयोग दिया । इस तरह से भारत की सभी भाषाओं में परस्पर आदान-प्रदान होता रहा है । साथ ही उनके परिष्करण में संस्कृत अपनी भूमिका निभाती रही है । अधिकांश भारतीय भाषाएँ संस्कृत व्याकरण दर्शन का ही अनुशरण करती हैं । जिन भाषाओं का उद्गम संस्कृत नहीं है, या जिनके साथ संस्कृत ने सहयात्रा की है उनके परिष्कार में भी संस्कृत का बड़ा योगदान रहा है । इसी के परिणामस्वरुप उत्तर और दक्षिण भारतीय भाषाओं की वाक्य रचना में प्रकृति एवं प्रत्यय में, शब्द धातु में, कथन शैली में, भाव धारा में एवं चिंतन प्रणाली में यत्र-तत्र-सर्वत्र समानता मिलती है । आधुनिक भारतीय भाषाओं में जैसा प्रकट भेद दिखता है वैसा लोकभाषाओं में नहीं है । लोकभाषाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं । परवर्ती तमिल सिद्धों की 'बानी' उत्तरापथ के संतों की 'वाणी' से मिलती है । अवधी से पूरब चलें तो क्रमशः भोजपुरी, बज्जिका, मैथिली, बंगला, असमिया आदि में अंतर और एकत्व की छटाएं दिखेंगी । इसी प्रकार अवधी से दक्षिण चलें तो कुछ परिवर्तन के साथ बुन्देली, बघेली से छत्तीसगढ़ी जुड़ी हुई मिलेगी । छत्तीसगढ़ की एक भाषा का रूप कलिंगा उड़िया से जुडा हुआ है दूसरा बस्तर का भाषा रूप हाल्वी तेलगु के निकट पहुंचता है ।

भाषाओं के विकास मार्ग को समझकर यदि आप पदयात्रा शुरू करें तो बिना भाषाई कक्षा लिए देशभर की भाषा जान सकते हैं और आपको संवाद की कहीं कोई समस्या नहीं होगी । ऐसा इसलिए है क्योंकि भाषा में अंतराल के साथ आंशिक लेकिन क्रमिक परिवर्तन होता है और फिर वह नया रूप ले लेती है । इस तरह से आत्मा के स्तर पर भारत की सभी भाषाएं एक हैं, और विभेद मात्र व्यवहारगत है । हमें एक ऐसी भाषा का चयन करना है जो इस एकात्मता का प्रतिनिधित्व कर सके । संस्कृत की थाती हिन्दी को उत्तराधिकार में मिली है । अतः, भाषाई एकात्मता की प्रतिनिधि के रूप में हिन्दी को स्वीकार्यता पाने का अधिकार है । हिन्दी के विकास के क्रम में अनेक भाषाओं के शब्द उसमें घुल-मिल गये हैं । तब भी, भारतीय भाषाओं की शिकायत है हिन्दी भाषा-भाषियों ने उनके साथ सहोदर सा व्यवहार नहीं किया है । जबकि ऐसा है नहीं । हिन्दी में उसकी लोकभाषाओं व भारतीय भाषाओं के हजारों शब्द व्यवहार में हैं । यथा- श्री और श्रीमती का प्रयोग तिरु और तिरुमती से प्रेरित है । यह दक्षिण की भाषाओं से हिन्दी को मिला है । ऐसे अनेक उदारहण दिए जा सकते हैं । हालांकि, अलिखित को लिखित करने के दुष्परिणाम भी सामने आये । शब्दकोशों के निर्माण से पूर्व भाषाई संगमन की जो गति थी, वह शब्दकोशों के निर्माण के बाद मंद पड़ गई । भाषाओं की सीमारेखा खींच दी गई । आज आवश्यकता इस संगमन को बढ़ाने की है । हिन्दी में भारतीय भाषाओं के इतने शब्द सजा दिए जायें कि सभी भाषा-भाषियों को अपनेपन का आभास हो। ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा ही है कि स्व का बोध ही प्रिय बनाता है । जब तक भारतीय भाषा-भाषियों को हिन्दी में वह स्व स्पष्ट रूप से नहीं दिखेगा, स्वीकार सिद्ध न हो सकेगा । ऐसा करने में भाषा-विज्ञान सम्बन्धी कोई चुनौती नहीं आएगी । क्योंकि भाषाई विभेद का कोई वैज्ञानिक आधार है ही नहीं । विरोध सिर्फ प्रकट स्वरुप व व्यवहार को लेकर हो रहा है । उदाहरण के लिए, तमिलनाडु में हिन्दी का जो विरोध हुआ, उसका भी कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है । इसकी प्रस्तावना पादरी रोबर्ट कोल्डवेल ने लिखी थी । पादरी रोबर्ट कोल्डवेल की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए आधुनिक भाषा-ज्ञान के प्रवर्तकों ने शोधादि का स्वांग रचकर यह साबित कर दिया गया कि उत्तर भारत की भाषाओं का यूनानी, ईरानी, जर्मन और लातीनी भाषाओं से सम्बन्ध तो है लेकिन विध्यांचल के दक्षिण में प्रचलित 'उन भाषाओं' से इनका कोई सम्बन्ध नहीं, जिसकी वैयाकरणिक व्यवस्था उत्तर से जाकर ऋषि अगस्त्य ने बनाई थी । अपनी पुस्तक 'द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन' के जरिये कोल्डवेल ने तमिल लोगों में उस भावना का बीज बोया कि उनकी भाषाओं का उत्तर भाषाओं से कोई मेल नहीं हो सकता है । वहीं जब उत्तरापथ और दक्षिणापथ की परम्परायें, शास्त्र, सामाजिक व्यवस्था व आराध्य देव एक ही हैं फिर उनकी भाषा में कोई अंतर्भाषिक सम्बन्ध न हो ? ऐसा कैसे हो सकता है ?

अधिकांश जटिलतायें व भाषाई संघर्ष राजनीतिक मूढ़ता व अदूरदर्शिता का परिणाम हैं । स्वतंत्र भारत के प्रान्त विभाजन में एक बड़ी राजनीतिक चूक हुई । आजादी के बाद देश में प्रान्तों या राज्यों का बंटवारा भाषाई आधार पर हुआ और वर्तमान में भारत के प्रत्येक प्रान्त के पास अपनी एक अभ्यासी भाषा है । इससे भाषा आधारित राजनीति शुरू हुई और पादरी कोल्डवेल की आत्मा को फिर से जाग्रत किया गया । कोल्डवेल का महिमामंडन शुरू हुआ, मरीना बीच के पास उसकी मूर्ति स्थापित हुई । दक्षिण में सक्रिय मिशनरियां

शेष पृष्ठ संख्या 59 पर

भाषा की सामाजिक निर्मिति

भाषा सिर्फ वह नहीं है, जो लिखी और बोली जाती है, बल्कि वह भी है जो हमारी सोच, व्यवहार, रुचि और मानसिकता को बनाती है। आज लिखित भाषा से ज्यादा इस मानसिक भाषा का विश्लेषण जरूरी है। भाषा की संरचना में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं का अहम योगदान होता है। इसलिए अब भाषा पर चिंतन सिर्फ कुछ जुमलों को लेकर नहीं किया जा सकता, बल्कि उन सभी आयामों, संदर्भों पर बात करनी होगी, जिनसे 'भाषा' का निर्माण होता है या फिर जिनसे भाषिक मानसिकता बनती है।भाषिक मानसिकता ही भाषा के निर्माण में अहम होती है। भाषा पर हिन्दी में आज भी कुछ परंपरागत जुमलों के साथ ही बात होती है, जिनमें 'भाषा बहता नीर है', 'भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है' आदि कहा जाता है। किसकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है? उसकी भी क्या, जिसकी आवाज कभी सुनी ही नहीं गई? कैसी अभिव्यक्ति का माध्यम है, जिसमें सिर्फ खास लोगों की अभिव्यक्ति होती है। आज तक वही इस माध्यम का इस्तेमाल करते रहे हैं, जिनका वर्चस्व रहा है।

भाषा की निर्मिति में सामाजिक संरचना के साथ-साथ वर्ग, जेंडर और जाति की भी अहम भूमिका होती है। गौरतलब है कि भाषा विशेष का वर्चस्व और किसी खास भाषा से वर्ग विशेष का लगाव कोई नई बात नहीं है। यह भी सही है कि हमेशा से ज्यादातर भाषाएं अपनी निर्मिति में कुछ पूर्वाग्रहों (लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्र आदि) से ग्रस्त रही हैं। तमाम भाषाओं में ऐसे संकेत देखे जा सकते हैं। अपने भारत में कुछ भाषाओं के नाम (अपभ्रंश, पैशाची) ही वर्चस्व की सूचना देते हैं।भाषा का अपना एक वर्ग होता है। भाषा का वर्गीय आधार समाज में कई स्तरों पर देखा जा सकता है। स्त्री-पुरुष के संबंध में वर्गीय चेतना का पूरा ढांचा स्पष्ट हो जाता है। पितृ सत्तात्मक समाज में वर्चस्व पुरुष का रहा, उसने अपने अनुसार भाषा गढ़ी और नियम बनाए। स्त्रियां दासी की तरह इस भाषा का अनुसरण करती रहीं। औपनिवेशिक शक्ति जब किसी देश को गुलाम बनाती है, तो वह उसकी भाषा पर भी अपना वर्चस्व स्थापित करती है। 'मैकाले' ने भारतीय भाषाओं के बारे में कहा कि 'यहां (भारत) के देशी लोग जो बोलियां आमतौर पर बोलते हैं, वे बहुत गई-बीती और कर्कश हैं।' भाषा के संबंध में औपनिवेशिक शक्तियों का यही रवैया हर गुलाम देश के प्रति रहा है। आज भी पश्चिमी देशों की धारणा एशिया और अफ्रीका के देशों में बोली जाने वाली भाषा के प्रति ऐसी ही है। 'एडवर्ड सईद' अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि 'आप उन लोगों की भाषा और इतिहास सीखते हैं जो आपके स्वामी हैं, लेकिन साथ ही आपको यह मानने के लिए भी बाध्य किया जाता है कि आप उनके जैसा कभी नहीं हो सकते।' सत्ता और शक्ति अपनी बातें कमजोर और गरीब देशों तथा लोगों पर थोपती है। पश्चिम के देशों की यही नीति एशिया और अफ्रीका के देशों के प्रति रही है। भाषा के माध्यम से वे अपनी शक्ति को इन देशों पर कायम करना चाहते हैं।

भाषा आज केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि भाषा के साथ सत्ता, शक्ति, वर्ग जैसी कई अवधारणाएं जुड़ी हैं। भाषा की राजनीति काफी पुरानी है। इसी भाषा की राजनीति के कारण एक वर्ग हमेशा से इसका लाभ लेता रहा। खास वर्ग और आम वर्ग की अपनी-अपनी भाषा होती है। जो भाषा आभिजात्य वर्ग या फिर शासक वर्ग की होती है वही साधारण जन और शोषित समुदाय की नहीं होती। साधारण आदमी की भाषा को गंवारू और असभ्य कह कर आज उसे नष्ट किया जा रहा है। इसलिए भाषा विमर्श का यह वर्गीय स्वरूप आधुनिक युग में और ज्यादा जटिल और भयानक हो गया है।भाषा का मानसिक व्यवहार उसकी सामाजिक संरचना से तय होता है। भाषा के संदर्भ में जेंडर का प्रश्न हाल के दिनों का सबसे ज्वलंत प्रश्न है। भवदेव पाण्डेय ने स्त्री और दलित अस्मिता विमर्श के तर्कों के आधार पर हिन्दी भाषा और उसके लेखकों के सवर्णवादी और पुरुषवादी चरित्र को रेखांकित करते हुए लिखा है, 'इतिहास साक्षी है कि संस्कृत और हिन्दी के कोशकारों ने दलित और स्त्री-वाचक शब्दों के साथ भारी छल किया है। एक तो ये सभी कोशकार पुरुष दंभ से आक्रांत थे, दूसरे सवर्णवादी संकीर्ण मानसिकता के भी शिकार थे। यह इनका दोष नहीं था, क्योंकि दूसरे शास्त्रवादियों की तरह ये रूढ़िगत और अलगाववादी सामाजिक संरचना के ही उत्पाद थे। इन लोगों ने साहित्य, धर्म, दर्शन और अध्यात्म पर तो हजार-हजार वितंडाएं खड़ी कीं, लेकिन दलितों और स्त्रियों से संबद्ध शब्दार्थों में न कोई मौलिक कल्पना की, न ही समाज के मनोवैज्ञानिक परिवर्तन को दृष्टि में रख कर नव-अर्थांतरण ही किया। सवर्णवादियों के लिए शूद्र केवल शूद्र थे और मर्दों के लिए औरत महज औरत थी।'

भाषा को संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। लेकिन भाषा में जब गुलामी और दासत्व का भाव हो तो ऐसे में संस्कृति के साथ उसका कैसा संबंध होता है, देखने वाली बात है। अंग्रेजों ने हमारे देश के साथ-साथ भाषा को भी गुलाम बनाया। भाषा की उस गुलामी को हम आज भी ढो रहे हैं। सत्ता कभी नहीं चाहती की साधारण व्यक्ति उसकी बराबरी करे या उसके नियमों की अवहेलना करे। इसलिए सत्ता हमेशा भाषा के ऐसे नियम लागू करती है, जिन्हें चाहे-अनचाहे हम ढोते हैं। भाषा का वर्गीय चरित्र भी काफी कुछ सत्ता के भाषिक व्यवहार से स्पष्ट होता है। एक मजदूर की वही भाषा नहीं होती, जो उसके मालिक की होती है। आज भाषा का श्रम से वैसा कोई रिश्ता नहीं है। भाषा का आज एक वर्ग है। यह

वर्ग आधुनिक युग में संचार क्रांति और वैश्वीकरण के बाद और अधिक विस्तृत रूप में उभरा है। जिस श्रम से जिस भाषा का जन्म हुआ था आज वह लुप्त हो चुकी है। आज सारा खेल सत्ता और शक्ति का है- 'भाषा की सत्ता और उसकी राजनीति का खेल वास्तव में रोजी-रोटी और सुविधा पर अधिकार का खेल है, जिसमें एक वर्ग अपनी भाषा के बल पर हमेशा लाभ उठाना चाहता है और उसी के दम पर विशिष्ट बना रहना चाहता है। इसके लिए वह हर तरह के हथकंडे अपनाता है।'भाषा के इस वर्गीय चरित्र पर रामविलास शर्मा भी लिखते हैं। वे प्राचीन से लेकर आधुनिक भारत में इस वर्गीय भाषा चरित्र का अवलोकन करते हैं- 'भाषा समूचे समाज की संपत्ति है। स्तालिन ने भाषा का आधार मानने वालों का सही खंडन किया है। इसका यह अर्थ है कि भाषा के विकास में वर्गों की महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं होती। सामंतों, व्यापारियों, विद्वानों की सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं के कारण ही संस्कृत और लैटिन का परिनिष्ठित रूप संभव हुआ है और इन भाषाओं का अखिल भारतीय और अखिल यूरोपीय व्यवहार होता था। सामंती व्यवस्था के ह्रास और व्यापारियों द्वारा नए पूंजीवादी संबंधों के प्रसार के साथ मास्को, लंदन, पेरिस और दिल्ली की बोलियों के आधार पर रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी और हिन्दी भाषाओं का जातीय भाषाओं के रूप में गठन हुआ था। इस प्रक्रिया में पूंजीपति वर्ग की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। साथ ही मजदूर वर्ग, मध्यवर्ग और शहरों के संपर्क में आने वाले किसान भी इस जातीय भाषा को अपनी बोलियों के साथ काम में लाकर उसके प्रसार में सहायता करते हैं और बहुधा अपनी बोलियों के तत्व मिला कर उसे समृद्ध करते हैं।'

आज हमारे देश में ऐसे ही कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जो हमारी भाषा का परिष्कार कर रहे हैं। व्यक्तित्व विकास के नाम पर हमें 'जी-हुजूरी' की भाषा सिखा रहे हैं। यह एक खास वर्ग की भाषा है। इसलिए आधुनिक समाज में भाषा के वर्गीय चरित्र को नकारा नहीं जा सकता। आज सभ्य और संभ्रान्त वर्ग की अपनी भाषा है, तो मजदूर किसान और गांवों के लोगों की भी एक अपनी भाषा है, जिसे तथाकथित सभ्य लोग हेय दृष्टि से देखते हैं। इसलिए भाषा का अध्ययन अब शब्द और अर्थ से आगे किया जाना चाहिए।

साभार : जनसत्ता

-प्रकाश चन्द्र

शिष्टाचार भेंट

12 अक्टूबर, 2021 को केंद्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के उपाध्यक्ष श्री अनिल जोशी से उनके दिल्ली स्थित कार्यालय में अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक एवं श्री विजय शर्मा, कार्यकारी संपादक, हिन्दुस्तानी भाषा भारती (त्रैमासिक पत्रिका) ने शिष्टाचार भेंट की, कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं पर चर्चा हुई और अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें भेंट की गई। इस अवसर पर डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, क्षेत्रीय निदेशक, केंद्रीय हिन्दी संस्थान की विशेष उपस्थिति रही। भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्धन के अकादमी के अभियान में विनम्र एवं मृदुभाषी श्री अनिल जोशी जी से हुई इस भेंट के अवश्य ही सुखद परिणाम आएंगे।

शिष्टाचार भेंट

26 अगस्त,2021 को केंद्रीय सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग राज्यमंत्री श्री भानु प्रताप सिंह वर्मा जी से उनके दिल्ली निवास पर एक शिष्टाचार भेंट की । इस अवसर पर अकादमी द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषाओं पर केंद्रित कुछ पुस्तकें व हिन्दुस्तानी भाषा भारती पत्रिका के अंक भेंट किये। इस अवसर पर हिन्दुस्तानी भाषा भारती पत्रिका के संयुक्त संपादक श्री राजकुमार श्रेष्ठ तथा समाजसेवी व्यवसायी श्री टी एन. चतुर्वेदी जी, कानपुर उपस्थित थे।श्री वर्मा जी उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र के जालौन लोकसभा क्षेत्र से पांचवीं बार के सांसद है। इस भेंट में बुंदेली भाषा, साहित्य, लोक-कला और संस्कृति के संवर्धन व संरक्षण पर संक्षिप्त लेकिन महत्वपूर्ण चर्चा हुई। आशा है कि इस मुलाकात से बुंदेली भाषा, साहित्य, लोक-कला आदि के संवर्धन के लिये दूरगामी सुखद परिणाम आएंगे।

संचार माध्यमों में बदलते-बिगड़ते बोल

श्रीमती संतोष बंसल

इस विषय पर चर्चा से पूर्व हम एक नजर आज के समय में भाषा की स्थिति पर डालें, जहाँ शब्दों की वास्तविकता नहीं दिखती । जो मुंह से बोला जाता है, सच्चाई उससे विपरीत होती है । व्यक्ति की स्वयं की जो कमजोरियां या गलतिया हैं, उन्हें आरोप-प्रत्यारोप के रूप में उलट दिया जाता है । जो कोई भी सच को कहना या दिखाना चाहता है, उसका मखौल बना कर बात हवा में उड़ा दी जाती है । कहीं भी सत्य का अहसास नहीं होता, छद्म बयानबाजी सुनाई देती है। अगर हालत खराब है, तो स्थिति को दबाकर ढक दिया जाता है । कोई सच बोलने का साहस करता है, तो उसे सीखचों में कैद कर लिया जाता है । सही आवाज को देशद्रोह या धर्म के खिलाफ करार कर दिया जाता है । उन्हें आतंकी या अपराधी घोषित करके कानून का दुरूपयोग किया जा रहा है और न्याय की आवाज का गला घोटा जा रहा है । हम एक अजब सी मन:स्थिति में जी रहें हैं, जो घुटन और बैचेनी का अहसास करवाती है । रिश्तों और सम्बन्धों से कटे हुए लोग आभासी दुनिया से जुड़ गए है, जहाँ असली और नकली की पहचान नहीं होती । भाषा का स्थान लाइक्स, स्माइलीज, इमोजी और कृत्रिम चिन्हों ने ले लिया है, लोग लिखने की जहमत नहीं उठाना चाहते । भावनाओं और विचारों को वहन करने वाले शब्दों को कागज पर उतारने का जो चलन था, वह दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है । अभिव्यक्ति की डोर पकड़ने वाली चिट्ठियां और पत्र लिखने का रिवाज खत्म होता जा रहा है । ऐसे में भाषा में संवादहीनता या वार्तालाप की संभावना समाप्त हो गयी है, जबकि पहले खामोशी की भी अपनी भाषा होती थी । चर्चा के नाम पर एक-दूसरे की बात काटना या लगातार तेज बोल कर दूसरे की आवाज को दबाना अथवा सभी के एकसाथ बोलते हुए मंच को भिंडी बाजार बना देना आम हो गया है । पिछले दो दशकों में ही संचार माध्यमों के तेजी से विस्तार के साथ, भाषा-शैली में बहुत बदलाव हुआ है । जिसकी छान-बीन के लिए हमें संचार के विभिन्न अंगों के अंतर्गत, भाषा के बदलते स्वरूप और बिगड़ते रूप की समीक्षा करनी होगी ।

सबसे पहले हम प्रिंट मीडिया में भाषा की बदलती स्थिति पर विचार करें तो पाएंगे कि अंग्रेजी के ढेरों शब्दों को देवनागरी लिपि में लिखकर समाचार-पत्र छापें जा रहें हैं । उन्हें पढ़ते समय भाषा की अशुद्धि के साथ, उसमे इंग्लिश के शब्दों की खिचड़ी पकी हुई नजर आती है । यह अजब विडंबना है कि हिन्दी के समाचार पत्रों में जहाँ विज्ञापन अंग्रेजी में दिए जाते हैं, वहीं ज्यादातर विज्ञापनों में हिन्दी के शब्दों को गलत भी छापा जाता है । यद्यपि हिन्दी के अखबार और पत्रिकाएं पढ़ने वाले लोग बहुत सीमित मात्रा में रह गए हैं एवं युवा वर्ग ज्यादातर अंग्रेजी समाचार-पत्र ही पढ़ते हैं । यदि वे हिन्दी लेखन, पत्रकारिता या अनुवाद से जुड़े भी हैं, तो उनकी भाषा की समझ व्यवसाय तक ही जुडी हुई है । न केवल लिखने में, बल्कि बोलने में भी अब युवा वर्ग 'हिंग्लिश' ही प्रयोग करता है । यह भूमंडलीकरण अथवा वैश्वीकरण का प्रभाव है, जिससे लोग अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा से दूर होते जा रहें हैं । जबकि भारतीय प्रवासी विदेशों में हिन्दी भाषा सिखाते हुए अनुस्वार तथा अनुनासिक तक के भेद को महत्व देते हुए भाषा की शुद्धता पर ध्यान रखते हैं । इसके अलावा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भी भाषा का शुद्ध स्वरूप नहीं मिलता एवं कंप्यूटर व इंटरनेट क्रान्ति के फलस्वरूप बहुत से अंग्रेजी के तकनीकी शब्द सामान्य रूप से इस्तेमाल होने लगे हैं । हिन्दी या अन्य भाषा में वैसी शब्दावली उपलब्ध न होने से, वे शब्द ज्यों के त्यों अपना लिए जाते हैं । यद्यपि हिन्दी में कंप्यूटर के लिए 'संगणक' और इंटरनेट के लिए 'अंतर्जाल' आदि शब्दावली विकसित करने की कोशिश की गई, किन्तु ये प्रयास कमजोर और प्रभावहीन रहे । कोरोना काल में भी कोविड, एपिडेमिक, सोशल डिस्टेंसिंग, सेनेटाइजेशन, कोरन्टाईन, लॉकडाउन इत्यादि शब्द आम बोलचाल में शामिल हो गए और हमारी भाषा में इनका विकल्प होने पर भी वे प्रयुक्त न हुए । बल्कि 'मास्क' के हिन्दी रूपांतरण -मुखावरण, मुखपट्टिका, मुँह पट्टी आदि के अतिरिक्त लम्बी कोशिश ने तो इसका उपहास और मखौल बना दिया । इसीलिए न केवल भारत में, बल्कि विश्वभर के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में 'कोविड-19' की सारी शब्दावली एक जैसी प्रयुक्त और उच्चरित की गयी ।

ये भी इत्तफाक है कि हमें जहाँ संचार माध्यमों के विस्तार के साथ नई-नई सुविधाएं प्राप्त हुई, वहीं वैश्विक महामारी ने हमारे कदमों की रफ्तार को बाहर जाने से रोक दिया । ऐसे समय घर बैठे 'एप' द्वारा एक-दूसरे से संपर्क साधने के अलावा, घर से ही ऑफिस का काम कर सकने की सुविधाएँ प्राप्त हुई । महामारी के इस दौर में इंटरनेट द्वारा एक ओर हमें गोष्ठी या कॉन्फ्रेंस के लिए गूगल और जूम एप जैसी नई सुविधाओं का लाभ मिला, वहीं सभी स्कूलों ने 'ऑनलाइन टीचिंग' एवं 'वीडियोज' द्वारा बच्चों को शिक्षित करने का प्रयास किया । इससे वयस्क व्यक्तियों को तो लाभ हुआ, उन्होंने इस तकनीक के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में भाग लिया और वैचारिक स्तर पर वार्ता भी हुई । जिससे 'इंडियंस' एवं प्रवासी भारतीयों ने अपनी शुद्ध-प्रबुद्ध भाषा के साथ, साहित्यिक जगत में भी उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल की । किन्तु शैक्षणिक स्तर पर बड़े विद्यार्थियों को थोड़ा-सा फायदा हुआ, लेकिन प्राथमिक के छोटे बच्चों को कंप्यूटर पर एकाग्र चित्त होकर बैठना ही मुश्किल था । दूसरे बच्चे जो छोटी आयु में अपनी भाषा को विकसित कर रहें होते हैं, उन्हें इससे बड़ा नुक्सान पहुंचा । कक्षा में उपस्थिति से जहाँ वे अपनी अध्यापिका के समक्ष बैठ कर पढ़ते-सुनते थे, वहीं अन्य

बच्चों के संपर्क से उनका भाषाई विकास होता था । किन्तु पिछले वर्ष से घर की चारदीवारी में बंधे रहने से, उनकी भाषा और ज्ञान दोनों अविकसित और अधकचरे रह गए हैं । इसका प्रमुख कारण हमें अपनी जड़ों में तलाशना होगा, जहाँ कोरोना काल की 'ऑनलाइन' कक्षाओं में 'टीचर्स' द्वारा वाक्य बोला जाता है, 'I hope, आप सब अच्छे होंगे ।' मैंने स्वयं प्राथमिक विद्यालयों की अध्यापिकाओं को ऐसी मिली-जुली भाषा बोलते हुए सुना है, जिसमें अंग्रेजी शब्दों का घाल-मेल ही नहीं, बल्कि व्याकरण की धज्जियां उड़ाई जाती है । डॉक्टर दिनेश दधीचि के अनुसार, ष्कई बार वाक्य विन्यास में सर्वनाम, कारकों और योजकों आदि को छोड़कर संज्ञाएं, क्रियाएं आदि अंग्रेजी की ही होती है । पूरे वाक्य में अंग्रेजी के शब्द ज्यादा और हिन्दी के कम दिखाई देते हैं । (लेख-संचार माध्यमों में हिन्दी की स्थिति, हरिगंधा पत्रिका, सितम्बर 2020 अंक) इसके उपरान्त भाषा की बिगड़ती स्थिति की जांच करने के लिए हमें सोशल मीडिया पर भी एक नजर डालनी होगी । वास्तव में संचार माध्यमों में सोशल मीडिया ने लोगों को वास्तविक आजादी का अहसास कराया और अब तो इसके विभिन्न मंच भारत के शहरी और ग्रामीण जीवन में प्रभावशाली भूमिका निभाने लगे हैं । देश में इस समय व्हाट्स एप का प्रयोग करने वालों की संख्या जहाँ करीब 53 करोड़ तक पहुँच गई है, तो वहीं फेसबुक के उपयोगकर्ताओं की तादाद 40 करोड़ से ऊपर हो चुकी है । इसी तरह ट्विटर पर भी एक करोड़ से अधिक लोग सक्रिय हैं एवं बहुत से अन्य मंच जैसे यू-ट्यूब, इंस्टाग्राम इत्यादि पर भी भारतीय युवा वर्ग जुड़ा हुआ है । ऐसे सामाजिक आदान-प्रदान के लोकप्रिय माध्यमों में एक भिन्न स्थिति देखने को मिलती है । यहाँ रोमन लिपि में हिन्दी के शब्दों और वाक्यों को प्रयोग किया जाता है, जिससे भाषागत अराजकता की स्थिति बन गई है । आमतौर पर किसी को अपना व्यक्तिगत सन्देश भेजने के लिए हिन्दी में ही लिखना आसान लगता है, किन्तु हिन्दी के वाक्यों को देवनागरी की अपेक्षा रोमन लिपि में लिखना लोगों को ज्यादा सुविधाजनक लगता है । इसका एक खास कारण कंप्यूटर के 'की बोर्ड' पर केवल अंग्रेजी के 'अल्फाबेट्स' का होना है, यद्यपि अब स्मार्ट फोन की स्क्रीन पर दोनों भाषा का उपयोग संभव हैं । अब गूगल ने राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में लेखन की सुविधा प्रदान कर दी है, तथापि प्राथमिकता रोमन लिपि को दी जा रही है । इस प्रवृति का हिन्दी भाषा या अन्य मातृभाषाओं पर कैसा प्रभाव पड़ सकता है ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । इससे लेखन में अपनी भाषाओं के शब्दों के लुप्त होने की संभावना तो है ही, साथ ही प्रचलन में इंग्लिश शब्दावली प्रयुक्त होगी। जैसे हिन्दी में दफ्तर, विद्यालय और अस्पताल के स्थान पर ऑफिस, स्कूल और हॉस्पिटल शब्दों का ही प्रयोग होता है । बोलने और लिखने के दोनों माध्यमों में इस तरह के सैंकड़ों शब्दों को हम भूल चुके हैं और हिन्दी की गिनती तो बहुत कम बच्चे जानते हैं । हमारी भाषा में फलों- सब्जियों तथा दालों-अनाजों के नाम तक गायब हो गए हैं, उन्हें अंग्रेजी के नामों से बोला जाता है । इसके अतिरिक्त इस प्रक्रिया में भाषा के स्पष्ट मानकों का ध्यान नहीं रखा जाता, जो अत्यंत खतरनाक स्थिति है ।

चूँकि संचार माध्यमों में सिनेमा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है और दुनिया में हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने में इसकी महत्ती भूमिका है । इसीलिए सिनेमा के रुपहले पर्दे पर बोली जाने वाली भाषा का समाज और जन-जीवन पर क्या प्रभाव होता है ? यह एक विशेष अध्ययन का विषय है । स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त छठे -सातवें दशक में साफ -सुथरी पारिवारिक एवं सामाजिक फिल्मों में संवाद और भाषा भी संस्कारित और साहित्यिक होते थे । आठवें-नौवें दशक में भारतीय मध्यम वर्ग के बहुत से शिक्षित बच्चों के विदेशों में 'आई. टी. सेक्टर' में नौकरी करने से प्रवासी भारतीयों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई । कोई भी व्यक्ति चाहे कहीं भी निवास करें, किन्तु वह अपनी भाषा, संस्कृति और संस्कार से सदैव जुड़ा रहता है । इसका एक नतीजा यह हुआ कि अपने देश से दूर होने पर भी वे मनोरंजन के लिए बॉलीवुड सिनेमा ही देखना पसंद करते रहे । यही कारण है कि दूसरे देशों में हिन्दी फिल्मों ने न केवल हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाई, बल्कि बड़े स्तर पर सांस्कृतिक प्रभाव कायम किया । इस तरह फिल्मी दुनिया के अनुभव और अभिव्यक्ति में आधुनिक विविधता के साथ भाषा का विस्तार भी हुआ । लेकिन इधर सिनेमा में कला फिल्मों को छोड़कर, अधिकतर व्यावसायिक फिल्मों में लचर और निम्नस्तर की भाषा का प्रयोग हुआ । आजकल तो प्रदर्शन कलाओं में गालियों को विकार नहीं, व्यवहार मान लिया गया है और उनमें मर्यादा और शालीनता की खुले आम धज्जियां उड़ाई जाती हैं । फिल्म समीक्षक श्री सुनील मिश्र के शब्दों में, 'घृणित चरित्रों, पाशविक सहवास और गाली-गुफ्तार के साथ संवादों को रचकर क्षुद्र मनोरंजन की अंगीठी के बाहर अजब सी दफ्ती से हवा करने का काम चल रहा है । ये फिल्में जिस तरह से व्यवस्था, कानून और बाकी चीजों का मखौल उड़ा रही हैं, अपराध और हिंसा का समर्थन कर रही है, वह बहुत निराश करता है । हो सकता है, यह तरीका कुछ लोगों के लिए शायद थोड़ी देर की उत्तेजना का सबब बनता होगा, पर अंततः यह मनोरंजन क्षेत्र में अनियंत्रित होते सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों को रेखांकित करता है ।' (लेख -रुपहले परदे पर कुछ भी दिखा देने की होड़, हिन्दी हिन्दुस्तान अखबार) इन सबके अतिरक्त पिछले कुछ समय से सभी संचार माध्यमों का दुरूपयोग करते हुए, चुनावों के समय नेताओं द्वारा भाषणों में बोली जाने वाली भाषा भी अमर्यादित हो गई है । स्थानीय मुद्दे न उठाकर ये लोग एक-दूसरे पर व्यक्तिगत आरोप-प्रत्यारोप करने के साथ अमर्यादित भाषा का प्रयोग करते हैं । इनके शब्दों में गाली-गलौच और कीचड़ उछालने का प्रयत्न रहता है और पक्ष-विपक्ष द्वारा अशोभनीय एवं अवांछनीय भाषा बोली जाती है । यह स्थिति इस हद तक पहुँच गई है कि राजनीति में सभ्य व्यक्ति का मजाक बनाया जाता है, स्त्रियों का परिहास किया जाता है । नतीजा यह होता है कि चुनावी दंगल में हिंसा आम बात हो गई है

और उनके बाशिंदों द्वारा खून-खराबा करना सामान्य खेल । जिससे आम शांतिप्रिय नागरिक इस चक्र्व्यूह से बाहर रहता है और इस क्षेत्र को दबंग एवं गुंडे लोगों का मान लिया गया है । यह लोकतंत्र के लिए एक खतरनाक संकेत है, जिसमें टेलीविजन और व्हाट्सएप के मंचों पर भाषा के साथ संस्कार भी गंदे हो रहे हैं । किसको कब, कहाँ, क्या बोलना है, इसका ध्यान हमारे उम्मीदवारों और नेताओं को नहीं है । इस प्रकार, 'आज राजनीति, समाज में या सोशल मीडिया में जिस तरह की भाषा-बोली का प्रयोग हो रहा है, उससे बहुत चिंता होने लगी है । व्यक्ति कभी सत्ता या शक्ति के अंहकार में मर्यादाएं भूल जाता है और कभी विफलता से उपजी हताशा में । पहले समाज में आम प्रतिक्रिया भी बहुत सोच-समझकर होती थी और अखबारों में सम्पादक के नाम पत्र में गिनी-चुनी प्रतिक्रियाएं सम्पादित होकर छपती थी । अब सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की आजादी के मामले में क्रान्ति ही कर दी है । अब न जगह सीमित है, न शुद्धता-साफगोई जरूरी है । विषय ज्ञान के बिना भी टिप्पणी संभव है । नए किस्म की आजादी के साथ जो मंच बने हैं, उनका खूब दुरूपयोग भी हो रहा है । ऐसे दुरूपयोग से जो समाज बन रहा है, उसमें राजनेताओं के बिगड़े बोल रुलाने लगे हैं ।' (लेख-बिगड़े बोल की जड़े कहाँ है ? लेखक- श्री रामकृपाल सिंह, हिन्दी हिन्दुस्तान समाचार, 20 फरवरी 2021) इस तरह सोशल मीडिया की प्रमुख भूमिका और इसके विविध मंचों की विशाल संख्या को देखते हुए अधिकतर राजनीतिक पार्टियों ने आई. टी. सेल का भी गठन किया, जिनकी बड़ी-बड़ी टीमें काफी सक्रिय रहती हैं । कई बार भ्रामक खबरें फैलाने और अशालीन सामग्रियां तैयार करने के आरोप इन टीमों पर भी लगे हैं, जो दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं। किसी भी सभ्य देश के नागरिक को ही नहीं, बल्कि सरकारों को भी विपरीत विचार या विरोध के प्रति संवेदनशील होना चाहिए और भाषा में उच्चस्तरीय शिक्षित वर्ग की भद्र एवं सम्मान सूचक शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए । क्योंकि इसी से प्रत्याशी के आचरण तथा लोकतंत्र की खूबसूरती बढ़ती है, किन्तु हालात इसके विपरीत हैं । वे भूल जाते हैं कि सोशल मीडिया का मंच कुछ ही क्षणों में 'वैश्विक गाँव' बन विश्व में क्रान्ति मचा सकता है और लोगों को भीड़ तंत्र में बदल कर उकसा भी सकता है । विडंबना यह है कि सोशल मीडिया कंपनियों को ऐसे विवादों से व्यवसायिक लाभ होता है, इसीलिए वे इन चेतावनियों की अनदेखी करती रहती हैं । इस प्रकार सूचना माध्यमों के विस्तार के साथ हमारे देश में भी अभिव्यक्तियाँ बहुत मुखर और आक्रामक होने लगी हैं ।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में वे लाख दावे करें, मगर उनकी कार्यवाहियां सदैव पक्षपातपूर्ण रही हैं । इस प्रकार संचार माध्यमों के साथ सोशल मीडिया और ओ.टी.टी प्लेटफार्मों पर भाषा में बढ़ती अराजकता, अभद्रता व अश्लीलता को लेकर लगातार प्रश्न उठाये जा रहें हैं और यह मांग की जा रही है कि भारत सरकार इनके नियमन व निगरानी को लेकर हस्तक्षेप करे । लेकिन सरकार की मंशा एक साफ-सुथरा, निष्पक्ष डिजिटल मैदान तैयार करने की भले हो, किन्तु उसके किसी प्रावधान से अभिव्यक्ति की आजादी को कोई आंच नहीं आनी चाहिए । यह लोकतंत्र का बुनियादी गुण है, इसमें कोई कमी गंभीर नुक्सान की वजह बन सकती है । इन डिजिटल प्लेटफार्मों के लिए स्व-नियमन की व्यवस्था सही है, जिसमें राष्ट्रीय सुरक्षा व नागरिक-हितों की रक्षा के साथ भाषाई नियमों की सुरक्षा भी मूल रूप से होनी चाहिए ।

अंततः इन सारी स्थितियों और परिस्थितियों के बीच भी हम यही कहेंगे कि भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों को शामिल करने से जहाँ एक ओर शब्द कोष में वृद्धि होती है, वहीं भाषा का विस्तार होता है । वैसे भी भारतीय संस्कृति बहुरंगी रही है एवं प्रारम्भ से ही अनेक संस्कृतियों और भाषाओं के साथ तालमेल बैठाती रही है। हमारे समाज में अनेकों आक्रमणकारियों के आने के बावजूद, उनके साथ सामन्जस्य से रहने की परम्परा रही है, जो भाषा के स्तर पर भी स्वीकार्य रही । मध्यकाल की हिंदवी या हिन्दुस्तानी भाषा में अरबी -फारसी और उर्दू के शब्दों की भरमार है, जिसमें बाद में अंग्रेजी के भी बहुत से शब्द शामिल हुए । इस प्रकार आधुनिक हिन्दी में तत्सम, तद्भव और देशज शब्दावली के साथ अनेकानेक नए तकनीकी शब्द भी शामिल और प्रचलित हुए हैं और 'ग्लोब्लाइजेशन' के पश्चात नई हिन्दी में नित नया इजाफा हो रहा है तथा सोशल मीडिया के प्रचार-प्रसार के साथ अनेक 'एप' या 'फाईल' के शब्दों की सभी भाषाओं में भरमार हुई है, जो बोलचाल और लेखन में भी इस्तेमाल हो रहे हैं । इसके साथ कोरोना महामारी के फैलने के बाद, इस बीमारी से सम्बंधित बहुत सी शब्दावली भी हमारे जीवन में प्रवेश कर गई है, जिससे शब्द कोष में नए शब्द जुड़ गए हैं । किन्तु उन शब्दों से समृद्ध होती भाषाओं में, इसके साथ-साथ भाषा के परिमार्जन, मानकीकरण, वर्तनी और इसके व्याकरण आदि पर भी ध्यान देने और सुधार करने की जरुरत होनी चाहिए । वास्तव में भाषा के परिवर्तन और मानकीकरण में साहित्यकारों, लेखकों, बुद्धिजीवियों और पत्रकारों की भूमिका अहम होती है, क्योंकि लोग इन्हें ही अनुकरणीय मानते हैं ।

अतः इन्हें सफलता या व्यावसायिकता की चिंता किए बिना, अपनी अभिव्यक्ति को धार देने के लिए सहज-सरल हिन्दी का अभ्यास करने की जरुरत है । क्योंकि भाषा भावों को व्यक्त करने का साधन होने के साथ-साथ किसी भी देश की संस्कृति, परम्परा और समस्त ज्ञान भण्डार का विशाल कोष भी होती है । हिन्दी के प्रख्यात लेखक श्री शिवपूजन सहाय के अनुसार, 'राष्ट्र की जनता ही राष्ट्र की आत्मा है और राष्ट्र की भाषा ही राष्ट्र की वाणी है और राष्ट्र की भाषा ही राष्ट्र की संस्कृति की रीढ़ है ।'

-श्रीमती संतोष बंसल
ए-1/7, मियांवाली नगर, पश्चिम विहार, दिल्ली-87

हिन्दी-दिवस बनाम उपदेश-दिवस-हिन्दी का राजनीतिकरण और शुद्धिकरण

मो. नाज़िम अंसारी

हिन्दवी/हिन्दुस्तानी (खड़ी बोली से विकसित वह भाषा जो उत्तर भारत के अधिकतर क्षेत्रों में बोली और समझी जा रही थी) ही वर्तमान हिन्दी भाषा की जननी है । आधुनिक अर्थों में जिसे हम हिन्दी कहते हैं वह खड़ी बोली से विकसित हुई है और खड़ी बोली का इतिहास बहुत पुराना नहीं है इसलिए हिन्दी में शब्द-कोश निर्माण का कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में आरम्भ हुआ । नागरी प्रचारिणी सभा बनारस, ज्ञानमण्डल बनारस, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग जैसे संस्थानों और फादर कामिल बुल्के, हरदेव बाहरी, डॉक्टर रघुवीर आदि के व्यक्तिगत प्रयासों से बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अच्छे और स्तरीय हिन्दी शब्दकोशों का निर्माण हुआ । 1895 में E-A- Lazarus & Co-] Medical Hall Press] Benare (बनारस) ने The Students Hindi&English Dictionary प्रकाशित की जिसकी एक प्रति हार्वर्ड कॉलेज लाइब्रेरी में आज भी सुरक्षित है जहाँ से गूगल ने इसे इंटरनेट आर्काइव में सुरक्षित कर दिया है । इस कोश में उस समय प्रचलित हिन्दी के शब्दों का अर्थ अंग्रेजी में दिया गया है । नागरी प्रचारिणी सभा के शब्दकोश में ब्रज भाषा के शब्दों की भरमार है और उस समय के अनुसार यह स्वाभाविक भी था । भारतेन्दु हरिश्चंद्र जैसे लेखकों का तब यह मानना था कि खड़ी बोली में कविता लिखा जाना संभव नहीं है और इसके लिए ब्रज भाषा ही उपयुक्त है । खड़ी बोली से हिन्दी बनने की प्रक्रिया स्वाभाविक और काफी हद तक समावेशी थी, इसकी विशाल शब्द सम्पदा में संस्कृत, अरबी, फारसी के तत्सम शब्दों के साथ-साथ पुर्तगाली, तुर्की, अंग्रेजी, फ्रेंच, उत्तर भारत की सभी भाषा-बोलियों जैसे अवधी, ब्रज, मैथिली, मगही, भोजपुरी, राजस्थानी, मारवाड़ी, गुजराती, अंगिका, बज्जिका आदि के शब्द सम्मिलित थे, परिणामस्वरूप यह भारत के बड़े भू-भाग की व्यवहृत आम भाषा थी । हिंदवी या हिंदुस्तानी बाद में दो भाषाओं में बंट गयी, देवनागरी में लिखी गयी खड़ी बोली ने हिन्दी और फारसी लिपि में लिखी खड़ी बोली ने उर्दू का रूप धारण कर लिया । तत्कालीन राजनीति और सांप्रदायिक चेतना के कारण बड़ी संख्या में भाषाविदों और रचनाकारों ने हिन्दी को संस्कृतनिष्ठ बनाने की दिशा में एक प्रयोग किया जिसके तहत हिन्दी में आत्मसात हो चुके अरबी-फारसी के शब्दों का कम से कम प्रयोग किया जाने लगा । स्वाभाविक था की ऐसी कोई भी भाषा जो जनता के प्रयोगों से दूर हो अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती और इस प्रयोग का परिणाम भी यही हुआ । छायावाद के समाप्त होते-होते और प्रगतिशील आंदोलन के कारण साहित्य और बोलचाल की भाषा में जो अंतर आ गया था वह धीरे-धीरे समाप्त होता गया और वर्तमान (आधुनिक) समावेशी हिन्दी फिर से अपने पुराने स्वरुप में व्यवहृत होने लगी । इस हिन्दी में हिन्दी प्रदेश की विभिन्न भाषा / बोलियों के शब्दों के साथ-साथ अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, फ्रेंच और सबसे अधिक अंग्रेजी शब्दों की बहुतायत है ।

दुर्भाग्य से इस समय उत्तराखण्ड की स्कूली शिक्षा से जुड़े कुछ शिक्षक/प्रशिक्षक/अधिकारी अपने ऑनलाइन प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षकों विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षकों को हिन्दी के शुद्धिकरण का पाठ पढ़ा रहे हैं । व्हाट्सएप्प संदेशों में वे कहते/लिखते पाए जा रहे हैं- 'हिन्दी शुद्ध बोलो, ईमानदार की जगह निष्ठावान लिखो और बोलो' अन्य शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं- खबर- समाचार, गलती- त्रुटि, शर्म- लज्जा, आदमी- व्यक्ति, परेशानी- विपत्ति, मुश्किल- कठिन, कमजोरी- दुर्बलता आदि ऐसे ढेरों शब्दों के बहिष्कार की बात हिन्दी के शुद्धिकरण के नाम पर की जा रही है । अगर इन्होंने हिन्दी भाषा-साहित्य का इतिहास पढ़ा होता, भाषाएं कैसे विकसित और समृद्ध होती हैं जाना होता तो इस असफल प्रयोग को दोहराकर हिन्दी को जानबूझ कर नुकसान पहुँचाने की चेष्टा न करते ।

अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए राजनेता समय और अवसर के अनुसार हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए घड़ियाली आंसू बहाते रहे हैं । कभी हिन्दी के समर्थन में अनावश्यक बयानबाजी करते हुए तो कभी हिन्दी को थोपने का विरोध कर भाषा-विवाद पैदा करते रहे हैं । अगर हमारे राजनेता भाषाविदों, साहित्यकारों, लेखकों की मदद से कोई ठोस नीति बनाते तो हिन्दी की बड़ी सेवा होती । हिन्दी-दिवस, हिन्दी-पखवाड़ा मनाना, हिन्दी के प्रयोग पर दूसरों को उपदेश देना महज औपचारिक आयोजन से अधिक कुछ नहीं है क्योंकि ये हिन्दी प्रेम का दिखावा करने वाले व्यवहार में हिन्दी का एक वाक्य बिना अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के नहीं बोल पाते ।

इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद हिन्दी समृद्धि, सफलता और प्रगति के मार्ग पर निरंतर अग्रसर है इसका श्रेय जाता है उस विस्तृत बाजार को जो हिन्दी बोलने समझने वालों पर निर्भर है, हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, लेखकों, साहित्यकारों, स्तरीय समाचार पत्रों को, हिन्दी के कर्मठ अध्यापकों को, गैर-हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी को पहुंचाने के लिए हिन्दी फिल्मों को, आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व की पीढ़ी को हिन्दी की ओर आकर्षित करने वाले गुलशन नंदा, राजवंश, समीर, वेद प्रकाश काम्बोज, ओमप्रकाश शर्मा, इबने शफी जैसे लेखकों को, हिन्दी पट्टी के राज्यों की उन सरकारों को जिन्होंने हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया, शासकीय

कार्यों में हिन्दी का प्रयोग तथा हिन्दी में प्रतियोगी परीक्षाओं को बढ़ावा दिया, उन सभी अनुवादकों को जिन्होंने विभिन्न भाषाओं के महत्वपूर्ण ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया ।

बनारस से प्रकाशित हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश (1895) जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, से लिए गए कुछ शब्द जो आधुनिक हिन्दी में तो अब नहीं मिलते किन्तु कुमाउनी भाषा/ बोली में आज भी उन्ही अर्थों में व्यवहृत हैं-

(पुरानी हिन्दी के शब्द अर्थ सहित)(कुमाउनी के शब्द-अर्थ)

नेवतना, नेवता देना = to invite-आमंत्रित करना, बुलावा देना-न्यूतण

नोन तेल = salt and oil-नमक और तेल - लूण तेल

दुबधा = doubt, suspense-अनिश्चय की स्थिति - दुबिधा

नंगटा = naked-नंगा, निर्वस्त्र, लुच्चा- नंग

बासी-तिबासी = three day's stale food-तीन दिन का बासी-बासी तिबासी

बधु = a woman, wife, a lady-दुल्हन-बहू, ब्वारी

मौ = honey, शहद, मधु-मौ

मौमाखी = honey-bee, मधुमक्खी-मौन, मोमाखि

चक्कू = penknife-चकु, चक्खु

मजूर = labourer, बंततपमत-श्रमिक, कामगार

भागाभाग = flight, running away-भाजाभाज, किसी कार्य के लिए भागदौड़ करना

पराल = straw, भूसा-पुआल, पयाल, पराव, पलाल, धान के डंठल, भूसी

बरत = fast, vow, penance-बरत=व्रत, बरतबंद,/ब्रतबंद, उपनयन संस्कार

अधकपाली = a pain affecting half the head -अधकपाई, अदौ, अदुवा

पलीत= a ghost-भूत, युग्म में भूत-पलीत (वर्तमान हिन्दी में पलीद = अशुद्ध, अपवित्र, खराब, दुष्ट आदि के लिए प्रयुक्त) -गन्दा, मैला, अपवित्र, अशुद्ध

पाथर= stone-पत्थर- स्लेट जैसे पतले पत्थर जो मकान की छत, सीढ़ियों या रास्ते में बिछाने के काम आते हैं जबकि दीवार की चिनाई के काम आने वाले पत्थर ढुङ्ग कहलाते हैं

अदवान = बान की चारपाई में पायताने की ओर का अनबुना भाग जिसमें रस्सी डाल कर बुनाई को समय-समय पर कसा जा सकता है, braces for tightening the tape of a bedstead-अदवान, अदवाण, अद्वाण

उपर्युक्त शब्दकोश के अनुसार हिन्दी में उस समय (1850 से 1950 के बीच) निम्नलिखित शब्द प्रचलित थे लेकिन अब इनका प्रयोग नहीं होता-

नतेत = सम्बन्धी // नदौला = मिट्टी का बड़ा बर्तन // ननका = छोटा बच्चा // नगरवर्ती = नागरिक, // धारासार = मूसलाधार बारिश // दोपस्ता = गर्भवती // दारा =पत्नी // दाराधीन = पति जो अपनी पत्नी पर निर्भर हो, // आंग = अंग, शरीर // आगमजानी = घटनाओं को पहले से जानने वाला, भविष्य जानने वाला, // उदरिणी = गर्भवती स्त्री // एकेला =अकेला // अंकविद्या = अंक गणित // न्यायक = न्यायाधीश // परेवा = कबूतर // पावला = किसी भी सिक्के का चौथाई भाग // पारसाल = पिछले साल // पारशव = दूसरे की पत्नी से उत्पन्न पुत्र // पुनाराय = पुनः // पैलौठी का = सबसे पहले पैदा हुआ // बंचना = पढ़ना // बंझोटी = बाँझपन पैदा करने वाली दवा // बच्चे-कच्चे = बच्चे // बचनपाल = वादे को निभाने वाला // मोढ़ेवाली = वैश्या // यथातथा = किसी भी तरह // बमपुलिस = शौचालय // बहनेऊ = बहनोई // बसोवास = घर // बम्बा = कुंआ, झरना // पानपात्र = पीने का पात्र आदि ।

हिन्दी ने ये शब्द किसी प्रयोग के तहत नहीं बल्कि एक स्वाभाविक प्रक्रिया के द्वारा खोये हैं कहने का तात्पर्य यह है कि नई मुद्रा के समान नए शब्दों ने पुराने शब्दों को चलन से बाहर कर दिया। वर्तमान में यदि कोई हिन्दी के लोकप्रिय, लोक-स्वीकृत और प्रचलित शब्दों के बहिष्कार की कुचेष्टा करता है तो यह संभव नहीं है क्योंकि भाषाएं किसी तानाशाह के हुक्म से नहीं बल्कि लोक स्वीकार्यता से बनती, बिगड़ती और बदलती हैं ।

-मो. नाजिम अंसारी वाहिद मंजिल,
निकट सन व्यू होटल, भाटकोट रोड तिराहा,
पिथौरागढ़-262501 (उत्तराखंड)

"हमारी हिन्दी भाषा का साहित्य किसी भी दूसरी भारतीय भाषा से किसी अंश से कम नहीं है ।"

-(रायबहादुर) रामरणविजय सिंह

स्थानीय बोली राजस्थानी-एक परिचय

डॉ. अल्पना शर्मा

बोली व उप बोली का अर्थ - भाषा वैज्ञानिकों की दृष्टि से भाषा के तीन स्तर बोली भाषा और भाषा होते हैं और उनका प्रारंभिक स्वरूप बोली को माना जाता है। **प्रोफेसर कल्याण सिंह शेखावत** के अनुसार ''बोली भाषा का पहला स्तर है जिसका मुख्य स्वरूप किसी एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले निवासियों के अनुसार सीमित होता है।'' **भोलानाथ तिवारी** इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ''बोली और उप बोली उस सीमित क्षेत्र की भाषा को कहा जाता है जिसमें उसे बोलने वाले का उच्चारण लगभग एक जैसा होता है तथा जिसमें रूप रचना वाक्यों की बनावट शब्द और अर्थ से जुड़ी हुई खास भिन्नता नहीं होती है।'' **एडवर्ड सेपियर** के अनुसार ''समय के साथ कोई विशिष्ट बोली भाषा के रूप में भी बदल सकती है।'' **आचार्य देवेंद्र नाथ शर्मा** के अनुसार ''भाषा और बोली में अधिक अंतर नहीं होता है तथा यही बोलियां ही वक्त के साथ भाषा में रूपांतरित होने की क्षमता रखती है।''

विज्ञान का यह नियम है कि बोली का विकसित रूप ही भाषा है। बोली का स्वरूप मौखिक होने के कारण उसे व्याकरण के नियमों में नहीं बांधा जा सकता है विश्व की सभी समृद्ध भाषाएं स्थानीय बोलियों व उपबोलियों से विकसित हुई है। वही भाषा समृद्ध मानी जाती है जिसमें अनेक बोलियां होती हैं। जिस प्रकार हिन्दी में अवधी, मैथिली, भोजपुरी, हरियाणवी, बुंदेलखंडी। उसी प्रकार राजस्थानी भाषा मारवाड़ी, ढूंढाड़ी, मेवाड़ी, हाड़ौती, शेखावाटी, मेवाती, मालवी और बागड़ी बोलियों से बनी है।

राजस्थानी कम नई, आ वीरां री भास।
इण भासा रै कारणै, लड़ी मारेचा ल्हास॥

ठाकुर राम सिंह राजस्थानी की वंदना करते हुए लिखते हैं-

वीर भूरीवीर वाणी, अमर वाणी राजस्थानी,
अमर सहित री धिराणी, धाक थारी विश्वमानी,
अमर वाणी राजस्थानी।

भाषा वैज्ञानिक विवेचन- राजस्थानी 12 करोड़ लोगों द्वारा बोली जाती है। हरियाणा, पंजाब और पाकिस्तान तक में यह बोली जाती है। इसका 25000 वर्षों का इतिहास है। इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई मानी गई है, कुछ नागर अपभ्रंश से मानते हैं।इसकी लिपि मुड़िया रही है, आजकल यह देवनागरी में लिखी जाती है। शिकागो विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान विभाग में राजस्थानी व्याकरण पढ़ाई जाती है।

साहित्यिक विकास- लगभग 11 वर्ष पहले कई ग्रंथों में 'मरू भाषा' नामक किसी भाषा के गद्य और पद्य साहित्य के संकेत मिलने लग जाते हैं। जो 10वीं व 11वीं शताब्दी तक आते-आते काफी सांगोपांग साहित्य के रूप में उद्घाटित होने लगते हैं। 12 वीं सदी में हेमचंद्र की व्याकरण में ढोला मारु रा दोहा का उदाहरण देने के लिए खुलकर उपयोग किया गया जो स्वयं 10 वीं सदी की रचना है। हम भारतीय भाषाओं की चर्चा करते हुए मरू भाषा को विस्मृत नहीं कर सकते। महान कवि सूर्यमल मिश्रण ने अपने ग्रंथ में राजस्थानी को 'मरू भाषा' के नाम से संबोधित किया। कालांतर में यह भाषा डिंगल के नाम से जानी जाने लगी। राजस्थानी के इस नामकरण के समय अत्यंत समृद्ध साहित्य की रचना हुई। वे विद्वान जिन्होंने राजस्थानी भाषा के साथ अन्य भाषाओं का भी अध्ययन किया है। उनके मतानुसार राजस्थानी का उद्गम गुर्जरी अपभ्रंश (नागर अपभ्रंश) से हुआ है, यह हिन्दी समुदाय की भाषा नहीं है। राजस्थानी की सहेलियां गुजराती, सौराष्ट्री, मराठी इत्यादि भाषाएं हैं, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली, अवधी, हिन्दी आदि नहीं। इस भाषा का स्वरूप समझ आते ही अनेक भ्रांतियां दूर हो जाती है। एक तो यह कि यह हिन्दी की उपभाषा या बोली है। राजस्थानी एक स्वतंत्र भाषा है। राजस्थानी का सारा साहित्य डिंगल में लिखा गया है।

सोलहवीं सदी तक राजस्थानी व गुजराती को एक भाषा माना गया। स्वतंत्रता पश्चात राजस्थान के राज्यों का विलय हुआ और तत्पश्चात राजस्थान नामक राजनीतिक इकाई का जन्म हुआ तो उसकी भाषा का नाम भी राजस्थानी हो गया। राजस्थानी पांच प्रमुख शाखाओं में विभाजित है और प्रत्येक शाखा की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। ध्वनि उच्चारण एवं व्याकरण की विभिन्न विशेषताओं के कारण राजस्थानी एक अलग व स्वतंत्र भाषा है। इसमें विविध व विपुल साहित्य का सृजन भी हुआ है। मरू भाषा, डिंगल और राजस्थानी इसी के नाम है। मारवाड़ी, मेवाड़ी, शेखावाटी, ढूंढाड़ी, खैराडी, गौड़वाड़ी इत्यादि पश्चिमी राजस्थान के रूप हैं। पूरी राजस्थानी ब्रजभाषा से प्रभावित है। राजस्थानी भाषा का सांगोपांग अध्ययन करने वाले विदेशी विद्वानों में डच ग्रियर्सन, डॉ. .तैस्सीतरी, कर्नल जेम्स टक्ड प्रमुख हैं।

राजस्थानी भाषा के प्राचीनतम स्वरूप का दर्शन करने के लिए हमारे पास 'ढोला मारू रा दूहा' 'जेठवारा दूहा' एवं 'बीसलदेव रासो' प्रकाशित रूप में है। बीसलदेव रासो की भाषा आरंभिक राजस्थानी का रूप है। इस रचना के पश्चात राजस्थानी भाषा धीरे-धीरे अपने से दूर होती गई और उसने अपना स्वतंत्र रूप ग्रहण कर लिया। हिन्दी के अनेक विद्वानों ने आदिकालीन राजस्थानी साहित्य को वीर रस प्रधान साहित्य कहा है किंतु इन सभी ग्रंथों में मूल स्वर प्रेम व श्रृंगार का मिलता है। 15 से 20 वीं शताब्दी तक के राजस्थानी साहित्य में शूरवीरों की कीर्ति गाथाएं उनके आश्रित कवियों ने अधिकांशत: लिखी। कवि दुरसा जी आढ़ाने महाराणा प्रताप की प्रशंसा की तो कभी राजा बांकी दास ने इतिहास के लगभग

सभी वीरों का विरूद बखान किया। इस काल में राजस्थानी कवियों ने 'गीत' नामक एक नया छंद संसार के काव्य साहित्य को दिया। यह हिन्दी का गेय गीत नहीं है। इस काल में एक ओर युद्ध की शब्दावली का सृजन हुआ है वहीं दूसरी ओर युद्ध में मृत्यु को अत्यंत गौरवशाली बना दिया है। जीवन और मृत्यु का पूरा दर्शन राजस्थानी साहित्य की विशेषता है। अनुप्रास, वयण सगाई शास्त्रें की विशेष धवनियां और युद्ध के पैंतरों को दर्शाने वाली एक भाषा का जन्म हुआ जो धीरे-धीरे रूढ़ होती गई। इसी भाषा में वीरों की भुजाओं को फड़काया और हृदय में स्वामी भद्रि, वीरता आदि गुणों का संचार किया।

राजस्थानी भाषा के इन 600 वर्षों के काल में जहां वीर काव्य के माध्यम से एक नई भाषा का निर्माण हुआ जो धीरे-धीरे बार-बार के प्रयोग से रूढ़ हो गई तो इस काल में भद्रि और श्रृंगार में भी काव्य सर्जन हुआ, जिसकी भाषा जनता के आम व्यवहार के समीप रही। मीरा के पदों की शब्दावली वही है जो लोगों को समझ में आती है।श्रृंगारिक काव्य भी लोगों की समझ में आया। नीति विषयक उद्रियां भी इस काल में प्रचलित हुई। इस भाषा के संबंध में एक भ्रांति यह भी रही है कि चारणों द्वारा अधिकांश राजस्थानी साहित्य लिखा गया, लेकिन चारणों के अतिरिक्त ब्राह्मणों, राजपूतों, जैनों द्वारा रचित साहित्य चारण साहित्य से लगभग दुगुना है। राजस्थानी साहित्य की गौरवमयी छटा के दर्शन उसके गद्य साहित्य में भी होते हैं। जालौर के मुहणोत नैणसी, जोधपुर के कवि राजा बाकी दास, बीकानेर के दयालदास तथा बूंदी के सूर्यमल मिश्रण ने जिस गद्य की रचना अपनी वात,ख्यात वचनिका इत्यादि के माध्यम से की है वे अलग-अलग स्थानों पर बैठकर लिखी जाने पर भी राजस्थान की एकरूपता के दर्शन कराती है।

राजस्थानी में वात साहित्य की रचना भी हुई है कथानक की दृष्टि से इन्हें विभिन्न भागों में बांटा जा सकता है जैसे- ऐतिहासिक, काल्पनिक, पौराणिक आदि। इनमें प्रेम, वीरता, हास्य, निर्वेद आदि विषय अपनी संपूर्णता के साथ प्रकट हुए हैं। यह बातें अधिकांशत: घटना बहुल हैं तथा बीच-बीच में वर्णनों से भरी हुई है। वंशावली व पीढ़ियावली, पट्टा, परवाना द्वारा भी राजस्थानी भाषा का रूप निखरा। काव्य ग्रंथों की टीकाओं में सरल गद्य के दर्शन होते हैं। ख्याल में भी गद्य-पद्य दोनों के दर्शन होते हैं।'मुहणोत नैणसी की ख्यात' एक उत्कृष्ट रचना है।

भाषा का एक और स्वरूप है जो लोक साहित्य में परिलक्षित होता है वह है मौखिक साहित्य। लिखते ही इसमें निर्जीवता आ जाती है। इसका क्षेत्रफल विशाल और कालक्रम का अतिक्रमण करता हुआ होता है। अनगिनत लोगों का इसमें योगदान होता है, इसकी भाषा सरल होती है एवं जीवन की समस्याओं व घटनाओं से जन्म लेती है। हमारे लोकगीत, लोकनाटक, लोक कथाएं और परंपराएं, परिवार गाथाएं इस भाषा के अत्यंत समृद्ध उदाहरण हैं। लिखित साहित्य के मुकाबले में एक प्रतिशत भी नहीं है। लोकगीत संपूर्ण जाति की भाषा में व्यक्त होते हैं तथा एक प्रतीक की रचना करते हैं जो तथाकथित साहित्य नहीं कर पाता। लोक भाषा साहित्यिक भाषा से अधिक सबल व व्यापक होती है। विभिन्न रियासतों का विलय करके जो इकाई बनी उसकी भाषा राजस्थानी समझ ली गई इनमें जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, शेखावाटी, कोटा, बूंदी के अनेक लेखक सामने आए। राजस्थान प्रांत के आधार पर राजस्थानी भाषा का आंदोलन बना जो कई लोगों की समझ में मुश्किल से आया।

वर्तमान में भी राजस्थानी कविता के क्षेत्र में अनेक प्रयोग हुए हैं। गद्य की कई विधाओं में बहुत अच्छी रचनाएं सामने आ रही हैं। राजस्थान के प्राचीन ग्रंथों पर आज भी शोध हो रहा है। इनका वृहद् शब्दकोश भी प्रकाशित हो चुका है। इसकी कई व्याकरण पुस्तकें हैं। शिकागो विश्वविद्यालय में डॉक्टर बहल ने अंग्रेजी भाषा में राजस्थानी व्याकरण पर शोध किया है। रूस, इंग्लैंड, अमेरिका जैसे देशों में राजस्थानी भाषा-साहित्य-व्याकरण इत्यादि को लेकर काफी कार्य होता है। इन देशों में राजस्थानी लोक साहित्य का अधययन किया जा रहा है। विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में राजस्थानी विषय में बी.ए. एम.ए. तक पढ़ाया जाता है। इन पुस्तकों का प्रकाशन भी प्रकाशकों द्वारा किया जा रहा है। विभिन्न क्षेत्रों में राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति व शोध से संबंधित अकादमी खोली गई हैं। इससे सिद्ध होता है कि राजस्थानी भाषा का रथ गतिमान है।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ.सं. 8

2. डॉ. नीरज, जयसिंह, डॉ. शर्मा, भगवती लाल, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. सं. 1

3. शेखावत, कल्याण सिंह (1994), राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति जोधपुर, राजस्थानी ग्रन्थागार, पृ.सं. 4

4. डॉ. दाधीच, रामप्रसाद, (मई 1988), राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, पृ.सं.1

5. अलख दृष्टि, (अक्टूबर-दिसंबर 2015), जैन विश्व भारती परिसर, लाडनू, नागौर।

6. सेठिया, मूलचंद, (1984) सरदार शहर परिषद स्मारिका, कलकत्ता।

-डॉ. अल्पना शर्मा, सहायक आचार्य
उच्च अधययन शिक्षा संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
गांधी विद्या मंदिर, सरदार शहर, चूरू (राजस्थान)

हिन्दी के विकास में विदेशों की हिन्दी प्रचार संस्थाओं का योगदान

डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव 'सागर'

भारत में हिन्दी भाषा के विकास, प्रचार-प्रसार में प्रारंभ से ही संबंधित भाषा-भाषी समाज कवियों, लेखकों, संतो, महंतों एवं श्रोताओं तथा पाठकों का अनन्य योगदान रहा है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से यदि चर्चा करना प्रारंभ करें तो आदिकाल में जहां कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी भाषा के विकास रूप से साहित्य में अभिवृद्धि कर रहे थे। वहीं मध्यकाल के महान कवियों ने अवधी तथा ब्रज में साहित्य की धरोहर तैयार की जिस की आधारशिला पर हिन्दी के विकास का छत्र स्थापित हो सका। रीतिकाल में भाषा के व्याकरण पर जो कार्य हुआ वह भी सराहनीय रहा। भारतेंदु युग या कहें आधुनिक काल में भाषा के उत्कर्ष को सहज ही देखा जा सकता है। भारतेंदु काल तक पहुंचते-पहुंचते उसे पत्रकारिता की भाषा का रूप भी सहज सुलभ हो गया। चूंकि 1826 में हिन्दी पत्रकारिता का अभ्युदय हो गया था अत: हिन्दी भाषा, हिन्दी भाषी समाज तथा हिन्दी से संबंधित साहित्य के माध्यम से तो अभिवृद्धि की ही साथ ही पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी का प्रचार-प्रसार होने लगा।

हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के आंदोलन का इतिहास बहुत प्राचीन है। वैदिक काल से ही भारत विविधताओं में एकता ढूंढता आया है। कई विदेशी जातियां और आक्रमणकारी यहां आकर रच बस गए। इस प्रकार विशाल भारतीय समाज जीवन में विविधता का मिलन हुआ है। समग्र भारत में भारतीय संस्कृति की आत्मा एक ही रही है। इसी के अनुरूप भारतीय भाषा का निर्माण स्वत: होता आया है।

आधुनिक काल के अंतर्गत यदि हिन्दी के विकास में हिन्दी प्रचार संस्थाओं के योगदान पर अवलोकन करें तो यह श्रेय ईसाई धर्म पुरोहितों, कलकत्ता की ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी, आर्यसमाज, नवोत्थान के समर्थक देशप्रेमी भारतीय नेताओं का प्रमुख योगदान है।

यह तो भारत में हिन्दी के प्रचार की बात हुई। परंतु विदेशों में भी हिन्दी का प्रचार-प्रसार का कार्य जोरों पर चला। आज हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे बड़ी भाषा कही जाती है। हिन्दी का वर्चस्व वैश्विक परिदृश्य में अपने शिखर पर है परंतु इस ध्वज का स्तंभ विदेशों में फैली हिन्दी प्रचार संस्थाएं हैं जो हिन्दी के वर्चस्व को दिन प्रतिदिन बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हिन्दी का महत्व विदेशों में बहुत बढ़ा। गत 50 वर्षों में हिन्दी बोलने-लिखने और समझने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। हिन्दी संख्या में जितना विस्तार हुआ है उतना विश्व की शायद ही किसी भाषा में हुआ है। आज शब्द संख्या की दृष्टि से संसार की सबसे समृद्ध भाषाओं में मानी जाती है।

विश्व में हिन्दी को बढ़ाने वालों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। एक तो वे श्रमिक जो दास के रूप में 150 वर्ष पहले गए थे और आज वहां के नागरिकों के रूप में जिनकी गणना होती है। दूसरे ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, नीदरलैंड, स्वीडन, डेनमार्क, जर्मनी, नार्वे, त्रिनिदाद आदि देशों के प्रवासियों को सम्मिलित किया जाता है। इसमें केन्या, दक्षिण अफ्रीका आदि के अप्रवासी भी शामिल हैं। गत शताब्दी और वर्तमान समय में कुछ आजीविका की तलाश में तो कुछ व्यापार हेतु भारत से दूर देशों में गए। वे सभी अपनी संसति, कला, धर्म एवं भाषा के साथ वहां स्थापित हुए। पराए देश में अपनी संसति तथा भाषा ने ही उन्हें हौसला दिया। वे अपने साथ अपने धार्मिक ग्रंथों को भी ले गए जिससे हिन्दी से उनका अनन्य संबंध बना रहे। फलस्वरुप विदेशों में हिन्दी का बीज इन्हीं श्रमिकों एवं प्रवासियों ने बोया जो अब एक विशाल वृक्ष के समान अपनी समृद्ध छाया विश्व को दे रहा है।

गांधी, सुभाष, जवाहरलाल नेहरू आदि भारतीय नेताओं की प्रेरणा और मार्गदर्शन पर आकर प्रवासी भारतीयों ने भारत की स्वतंत्रता के साथ भावात्मक एकता स्थापित की तथा हिन्दी का पठन-पाठन एवं संपूर्ण निष्ठा से उन्होंने हिन्दी के प्रति अपना कर्त्तव्य समझा।

भारतीय नेताओं के अतिरिक्त भारतीय धार्मिक संस्थाएं और भारत के धर्म प्रचारकों ने भी प्रवासी भारतीयों के बीच जाकर भारतीयता के साथ-साथ हिन्दी भाषा का प्रचार और प्रसार किया। हिन्दी प्रचार संस्थाओं ने भी विदेशों में अपनी परीक्षाओं के केंद्र स्थापित करके हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था की है। इस प्रकार विश्व के कई राष्ट्रों में जहाँ प्रवासी भारतीय हैं, उनके बीच हिन्दी का प्रचार हो रहा है।

विदेशों में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से सरकार के तत्वावधान से सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं। हिन्दी प्रचार के अभियान को सफल बनाने की दृष्टि से बहुत कुछ प्रयास किए जा रहे हैं तथा बहुत से देश अपनी सहभागिता दिखा रहे हैं। फिजी, त्रिनिदाद, मॉरीशस स्थित भारतीय दूतावासों में हिन्दी अधिकारियों के प्रशंसनीय प्रयासों से हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बल मिल रहा है। इन अधिकारियों की सहायता से ही वहां हिन्दी पाठ्यक्रम के निर्माण, पाठ्य पुस्तकों के लेखन, हिन्दी समाचार पत्रों के प्रकाशन, रेडियो, टेलीविजन के प्रसारण और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। मॉरीशस में ही 10-12 हजार व्यक्ति हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विभिन्न परीक्षाओं में हिस्सा लेते हैं।

भारतीय संस्कृति संबंधी परिषद ने हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन को प्रोत्साहित करने के लिए

बुखारेस्ट और सोफिया में प्राधयापक भेजे हैं। त्रिनिदाद, गुयाना और सूरीनाम में हिन्दी प्राध्यापक कार्य कर रहे हैं। विदेशों में निवास करने वाले भारतीयों के लिए परिषद ने 'गगनांचल' नामक हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका का संपादन भी किया है।

वर्तमान में विश्व के अनेक देशों में हिन्दी का वर्चस्व है। विभिन्न राष्ट्रों के नागरिक और हिन्दी भाषा और साहित्य में रुचि रखने वाले विद्वान हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपनी रूचि एवं प्रयास दिखा रहे हैं एवं हिन्दी भाषा का विस्तार विश्व-पटल पर कर रहे हैं। विश्व में हिन्दी का प्रचार प्रसार की संस्थाएं निम्नलिखित हैं-

1. अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति रोजलिन वर्जिनिया:-

हिन्दी के विश्व स्तरीय स्थान दिलाने हेतु डॉ. कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह ने सन 1980 में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की स्थापना की। यह संस्था ख्याति प्राप्त संस्था है। बहुमुखी संस्था के तीन आयाम हैं- समिति द्वारा अमेरिका के दर्जनों शहरों में हर वर्ष आयोजित कवि सम्मेलन हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में सफल रहे। यहां तक कि समिति अमेरिका में हिन्दी बहुल क्षेत्रों के विद्यालयों में हिन्दी को द्वितीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने हेतु सतत प्रयत्नशील है। इस समिति का उद्देश्य हिन्दी शिक्षण, कवि सम्मेलन, साहित्यिक गोष्ठियों एवं प्रकाशन से हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार करना है। इसके साथ ही मानव मूल्यों को बनाए रखने तथा हिन्दी विद्वानों, लेखकों का विश्वव्यापी सेतु भी निर्मित किया है। यह समिति त्रैमासिक पत्रिका तथा ई-पत्रिका का प्रकाशन भी करती है।

2. मॉरीशस हिन्दी संस्थान, मॉरीशस:-

इस संस्थान की स्थापना सन 1970 में हुई थी। इनका उद्देश्य हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार-प्रसार करना एवं हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करना हैं जिससे हिन्दी का विस्तार हो सके। यह संस्था प्राथमिक और आध्यात्मिक स्तर पर हिन्दी सिखाने के लिए 6 विद्यालय संचालित कर रही है। इन विद्यालयों में लगभग 2000 छात्र एवं 75 अध्यापक हैं।

3. विश्व हिन्दी सचिवालय, मॉरीशस:-

इस संस्था की स्थापना का मंतव्य द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में लिया गया था। तत्पश्चात् चौथे विश्व हिन्दी सम्मेलनों में इस प्रस्ताव का समर्थन किया गया। इस संस्था की स्थापना में मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम का विशेष योगदान रहा है। सर्वप्रथम उन्होंने ही मॉरीशस में विश्व हिन्दी सचिवालय स्थापित करने का प्रस्ताव रखा। त्रिनिदाद और टोबैगो में आयोजित पंचम हिन्दी सम्मेलन के तुरंत बाद में मॉरीशस सरकार ने विश्व हिन्दी सचिवालय से संबंधित मामलों की देखरेख के लिए श्रीमती सरिता बूधू को सलाहकार नियुक्त किया और जून 1996 में भारतीय उच्चायुक्त द्वारा भारत सरकार के सहयोग से सचिवालय की स्थापना की। 17 सितंबर, 2001 से सचिवालय ने विधिवत कार्य करना प्रारंभ किया। नवंबर 2001 में मॉरीशस से फिनिक्स में सचिवालय के भवन का शिलान्यास किया गया। इस अवसर पर भारत सरकार के तत्कालीन मानव संसाधान विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी तथा मॉरीशस सरकार के अनेक मंत्री एवं कई महानुभाव उपस्थित थे। सचिवालय का प्रमुख उद्देश्य हिन्दी का एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रचार-प्रसार करना तथा इसको राष्ट्र-संघ की एक औपचारिक भाषा का स्थान दिलाना रहा है।

4. हिन्दी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस:-

इस संस्था के संस्थापक रामलाल मुगर हैं जिन्होंने 12 जून 1926 को इस समिति की स्थापना की। यह संस्था हिन्दी साहित्य एवं भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक उत्तरदायित्व भी निभाती है। इस संस्था को 'तिलक विद्यालय सभा' के नाम से भी जाना जाता था। हिन्दी भाषा साहित्य और हिन्दी संस्कृति का प्रचार करना इस संस्था का प्रमुख लक्ष्य है। इस संस्था का आदर्श वाक्य है- यदि भाषा समाप्त हो गई तो संस्कृति भी ढह जाएगी।

5. हिन्दी परिषद, नीदरलैंड:-

हिन्दी परिषद, नीदरलैंड की स्थापना 19 सितंबर 1983 को की गई थी। हिन्दी के प्रचार-प्रसार व प्रयोग को प्रोत्साहित करने हेतु परिषद की स्थापना की गई है। परिषद अपनी प्रवृत्तियों के माध्यम से हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं उन्नयन के लिए कार्य कर रही है। इनका उद्देश्य है कि ओ.ए.एल.टी. (विदेशियों की आधुनिक भाषा में उनका शिक्षण) के माध्यम से हिन्दी का परिचय करना है तथा हॉलैंड सरकार (शिक्षा अधिकारियों) से संपर्क स्थापित कर उनके सम्मुख ओ.ए.एल.टी. संबंधी प्रस्ताव रखना तथा हॉलैंड के विद्यालयों में हिन्दी शिक्षा के महत्व को रेखांकित करना है।

इसके साथ ही इस संस्था ने हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन भी किया एवं इसके साथ 'राष्ट्रीय हिन्दी सूचना दिवस' का आयोजन किया जिसे हिन्दी भाषा का विस्तार हो सके।

6. हिन्दी संगठन, मॉरीशस:-

12 दिसंबर 1994 के दिन हिन्दी संगठन की स्थापना मॉरीशस की संसद में विधेयक 33 के अंतर्गत हुआ। इसका कार्यालय पोर्टलुई में है। इस संगठन ने हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार तथा विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया है। संस्था के अंतर्गत हिन्दी भाषा तथा साहित्य के सृजन को प्रोत्साहन मिला है। इस संस्था ने राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी कार्यक्रम आयोजित किए। इस संगठन का लक्ष्य वाक्य है- हिन्दी विरासत के रूप में पूर्वजों से प्राप्त हिन्दी भाषा ऐसी बहुमूल्य निधि है जिसकी सुरक्षा व प्रचार-प्रसार करना हमारा कर्तव्य है। हमारी संस्कृति और अस्मिता हिन्दी के माध्यम से ही सुदृढ़ बन सकती है।

हिन्दी के संगठन के माध्यम से मॉरीशस में हिन्दी प्रचार-प्रसार में प्रतिबद्ध जिन विद्वानों, हिन्दीनिष्ठ साहित्यकारों ने

अपनी अग्रणी भूमिका निभाई है वे हैं- सर रविंद्र धारबन, श्री हनुमान दुबे, श्री राजनारायण गिरधारी, श्रीमती राजकुमारी आदि।

7. हिन्दी परिषद सूरीनाम:-

7 नवंबर 1977 को इस परिषद की स्थापना हुई। सातवां विश्व हिन्दी सम्मेलन दक्षिण अमेरिका के सूरीनाम देश में हुआ। इसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि जब मॉरीशस में सवेरा होता है तो सूरीनाम में रात्रि का चंद्रमा चमकता है परंतु इन दोनों ही देशों में हिन्दी भोजपुरी प्रेमी बसे हैं जो हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार में संलग्न हैं। सूरीनाम हिन्दी परिषद एक शैक्षिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थान है। सूरीनाम की सरकार ने इसे देश की हिन्दी भारतीय जनता का प्रतिनिधि-संस्थान की मान्यता दी हुई है। इस संस्था का उद्देश्य है हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कार्य जिससे हिन्दी पाठकों का इजाफा हो सके तथा शिक्षा जनसंसाधनों के माध्यम से मौखिक एवं लिखित हिन्दी के सहारे अंतरराष्ट्रीय संपर्क को बढ़ावा देना।

सूरीनाम में हिन्दी शिक्षण को विकेंद्रित कर अधिक से अधिक युवा तथा प्रौढ़ों तक पहुंचाया जा रहा है। पारामारियो (राजधानी) के अलावा निकेरी, यनिका, कोमेविने तथा सारामाका जिलों में स्वैच्छिक संस्थानों के सहयोग से शिक्षण कार्य चलता है। भारत सरकार के सहयोग से 'राष्ट्रीय भाषारत्न' तथा 'विशारद' परीक्षाओं का आयोजन भी होता है।[8]

किसी भी भाषा के विस्तार में उस स्थान विशेष का प्रमुख स्थान होता है। हिन्दी भाषा का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विदेशों में तेजी से हो रहा है। द्वितीय महायुद्ध के बाद हो रहे राजनीतिक परिवर्तनों से भारतीय संस्कृति को जानने के लिए हिन्दी भाषा को सीखने वाले लोगों की संख्या निरंतर बढ़ने लगी थी। दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि विश्व बाजार में भी भारत अपनी पहचान बना रहा है, जिसके कारण विदेशों में हिन्दी भाषा का विस्तार और भी हो रहा है। भारतीय संस्कृति को जानने की उत्सुकता हेतु हिन्दी सीखी जा रही है। हमारे साहित्य का अनुवाद विदेशी भाषा में हो रहा है इससे बड़ी उपलब्धि क्या होगी। इन सभी उपलब्धियों में विदेशी संस्थाओं का विशेष महत्व है। जिनके प्रयास से हिन्दी विश्व पटल पर अपना ध्वज लहरा रही है। यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि आज हिन्दी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किसी पहचान के मोहताज नहीं है वरन् उसने विश्व परिदृश्य में एक नया मुकाम हासिल किया है। अमेरिका से लेकर त्रिनिदाद तक हिन्दी का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। इस बढ़ते महत्व में हम विदेशी संस्थाओं का, जो हिन्दी के प्रचार-प्रसार में एड़ी-चोटी का जोर लगा रही हैं, समस्त हिन्दी भाषा-भाषी उनके ऋणी रहेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वर्ण जयंती विशेषांक महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी, डॉ. हिमांशु जोशी, पृ.255

2. राजभाषा हिन्दी विकास के विविध आयाम, मलिक मोहम्मद पृष्ठ 189-190

3. वही, पृष्ठ 190-91

4. हिन्दी सेवी संस्था कोश, वीरेंद्र परमार, पृ. 46

5. वही, पृ. 166

6. वही, पृ. 199

7. वही, पृ. 225

8. मॉरीशस एक लघु भारत, डॉ. जे.एस.सोनी, पृ. 52-53

डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव 'सागर'
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
वल्लभ राजकीय महाविद्यालय, मण्डी (हि.प्र.)

पृष्ठ संख्या 47 का शेष

इसकी प्रायोजक रहीं । देखते- देखते भाषाई आधार पर कथित 'आर्य और द्रविड़' के बीच दीवार मोटी और ऊंची होती गई । जबकि, उससे पहले देश में ऐसी स्थिति कहीं नहीं थी । आजादी से दो दशक पूर्व ही तमिलनाडु में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को अपार समर्थन मिला था और वहां एक के बाद एक शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय खोले गये थे । इसमें महात्मा गांधीजी के कनिष्ठ पुत्र देवदास गांधी, डॉ. सीपी रामस्वामी अय्यर, पं. हरिहर शर्मा, पं. ऋषिकेश शर्मा, स्वामी सत्यदेव, मोटूरि सत्यनारायण, देवदूत विद्यार्थी और राम नरेश त्रिपाठी सहित कई मनीषियों का बड़ा योगदान रहा । बालसुब्रमण्यम जी ने राजभाषा भारती में लिखा था कि तमिलनाडु में हिन्दी प्रचार की सफलता का प्रमुख कारण यह रहा कि तमिलनाडु के लोगों को हिन्दी सीखने में बहुत आनंद आया, अपनापन सा लगा क्योंकि भाषा की प्रकृति के स्तर पर हिन्दी और तमिल के क्रियापदों व क्रियापद की रचना में जो अद्भुत समानता मिलती है वह खड़ी बोली और अवधी में नहीं मिलती या तमिल और मलयालम में नहीं मिलती ।

हमें भारतीय भाषाओं की एकात्मता को स्थापित करना है । उसके लिए उन शब्दों का कोश तैयार करना होगा जो सभी भाषाओं में एक ही अर्थ में प्रयोग किये जा रहे हैं । उपयुक्तता के आधार पर विविध भाषाओं के शब्द हिन्दी में प्रविष्ट करने होंगे । इससे हिन्दी एकात्मता की प्रतिनिधि और अखिल हिंदुस्तान की अपनी भाषा बन सकेगी ।

डॉ. अरुण प्रकाश
79-ए, द्वितीय तल, ऑरोबिंदो अपार्टमेंट,
ऑरोबिंदो रोड, नई दिल्ली-110017

रिपोर्ट

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की पहल पर

हिन्दी दिवस के अवसर पर दिल्ली स्थित विभिन्न विद्यालयों द्वारा आयोजित हिन्दी दिवस की रिपोर्ट

हिन्दी दिवस के अवसर पर कोलंबिया फाउंडेशन स्कूल,डी– ब्लॉक,विकासपुरी के हिन्दी विभाग द्वारा 'हिन्दी का विकास, हमारा विकास' संगोष्ठी का आयोजन किया गया।संगोष्ठी में विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती दीपशिखा दांडू जी के साथ मुख्य अतिथि के रूप में श्रीमती रेखा मल्हान जी (लेखिका एवं कवयित्री)ने कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। बच्चों ने बढ़–चढ़कर कार्यक्रम की विभिन्न गतिविधियों में भाग लिया एवं काव्य पाठ किया। पीपीटी के माध्यम से बच्चों की गतिविधियों को प्रस्तुत किया गया । हिन्दी भाषा के महत्त्व और उसकी प्रासंगिकता को लेकर हिन्दी विभाग की अध्यापिकाओं ने अपने–अपने विचार रखे । संगोष्ठी के माध्यम से छात्रों एवं अभिभावकों को सन्देश दिया गया कि हमें हिन्दी भाषा का सम्मान करना चाहिए और इसके प्रचार–प्रसार में सभी की भागीदारी महत्त्वपूर्ण है। हमें हिन्दी बोलने में गर्व होना चाहिए और स्वभाषा के विकास से ही हम समाज, संस्कृति और देश का विकास करने में सक्षम होंगे । इस महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी का संचालन विभागाध्यक्ष श्रीमती कृष्णा दीक्षित द्वारा किया गया।

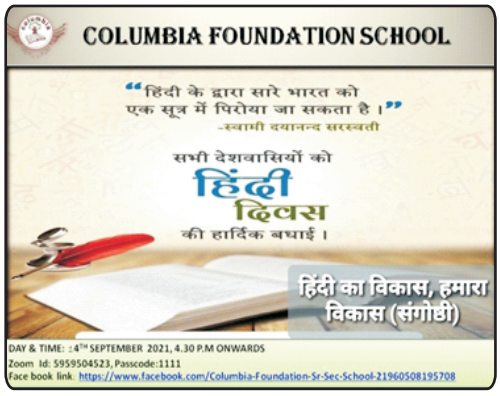

प्रस्तुति :
श्रीमती कृष्णा दीक्षित
विभागाध्यक्ष, कोलंबिया फाउंडेशन विद्यालय

दिल्ली न्यूज़ 7
सबके साथ सबकी बात

शुक्रवार, 17 सितम्बर 2021 ई-मेल : dillinews7editor@gmail.com www.dillinews7.in

हिंदी दिवस पर बॉस्को ने मनाया 'हिंदी उत्सव'

सुंदर विहार (संवाददाता)।

हर जुबां पर हिंदी का गुणगान होना चाहिए। संपूर्ण विश्व में हिंदी का परचम लहराना चाहिए॥

नई दिल्ली में राजभाषा हिंदी का सम्मान करते हुए 14 सितम्बर को 'हिंदी दिवस' को 'हिंदी उत्सव' के रूप में उत्साहपूर्वक मनाया गया। हिंदी दिवस पर विद्यालय के हिंदी विभाग की ओर से विभिन्न क्रियात्मक गतिविधियों एवं प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। अपनी राजभाषा पर गर्व करते हुए, विद्यालय के छात्र–छात्राओं ने आभासी (वर्चुअल) कक्षाओं के माध्यम से आयोजित गतिविधियों में उत्साहपूर्वक भाग लेकर 'हिंदी उत्सव' को सफल बनाया। इस अवसर पर भिन्न–भिन्न कक्षाओं के लिए विभिन्न गतिविधियों जैसे– काव्य पाठ, संवाद वाचन, नारा लेखन– वाचन, एकल अभिनय आदि का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर सभी कक्षाओं में आयोजित प्रतियोगिताओं के विजेताओं को ई– प्रमाण पत्र से सम्मानित किया गया।

हिंदी दिवस के अवसर पर विद्यालय के प्रधानाचार्य राजीव दुग्गल एवं उपप्रधानाचार्या श्रीमती प्रिया हांडा ने हिंदी विभाग की अध्यापिकाओं सहित आयोजित प्रतियोगिताओं के विजेताओं व विद्यालय के समस्त छात्र–छात्राओं को हिंदी दिवस और हिंदी के उत्थान में सहायक होने पर बधाई दी एवं उनके उज्ज्वल भविष्य हेतु शुभकामनाएँ दीं।

हिंदी दिवस
14 सितंबर '2021

प्रस्तुति : **नीलम गुप्ता** हिन्दीी शिक्षिका, बॉस्को पब्लिक स्कूल, पश्चिम विहार

हिन्दी दिवस के अवसर पर राबिया गर्ल्स पब्लिक स्कूल में हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया । छात्राओं ने हिन्दी भाषा से सम्बंधित पीपीटी का निर्माण किया जिसमें हिन्दी भाषा को राजभाषा के रूप में कब स्वीकार किया गया, हिन्दी भाषा का महत्त्व और भारत में उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया । विभिन्न कवियों और साहित्यकारों के योगदान का भी उल्लेख किया गया । कक्षा छठी और सातवीं की छात्राओं ने संत कबीर, रैदास, तुलसीदास और मीराबाई के पदों और दोहों को गाते हुए व अभिनीत करते हुए वृत्तचित्र बनाए । कक्षा नवीं और दशवीं की छात्राओं ने हिन्दी दिवस पर भाषण व कविताएँ प्रस्तुत कीं । 'कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती' कविता को मुख्याधार बनाया गया । कार्यक्रम को सफल बनाने में कई छात्रों व शिक्षकों का योगदान रहा । कार्यक्रम को सभी कक्षाओं में डिजिटल माध्यम से प्रस्तुत किया गया । कार्यक्रम को सभी ने बहुत सराहाया ।

प्रस्तुति :
ऋतु मल्होत्रा
विभागाध्यक्ष,
राबिया गर्ल्स पब्लिक स्कूल

हिन्दी भाषा के सशक्तिकरण एवं संवर्धन हेतु डी.ए.वी.सेंटेनरी पब्लिक स्कूल,पश्चिम एन्क्लेव, रोहतक रोड, नई दिल्ली में हिन्दी दिवस के अवसर पर एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया । कार्यक्रम की विभिन्न गतिविधियों में कक्षा पांचवीं से दसवीं तक के सभी विद्यार्थियों ने अपनी कला का प्रदर्शन अत्यंत उत्साहपूर्वक किया। इन गतिविधियों में उनकी कल्पनाशक्ति, विषय-वस्तु,कला एवं भाषण कौशल के साथ-साथ तकनीकी कौशल का अद्‌भुत समन्वय देखते ही बनता था। गतिविधियाँ इस प्रकार से हैं-

कक्षा पांचवीं : बुकमार्क तथा सूक्त वाक्य
कक्षा छठी : डूडल आर्ट
कक्षा सातवीं : स्टॉपमोशन द्वारा पंचतंत्र कथा प्रस्तुति
कक्षा आठवीं : इंकल राइटर पर पंक्तियां देकर कविता एवं कहानी लेखन
कक्षा नवीं : ऑटोड्रा ऐप पर नारा लेखन एवं संदेश लेखन
कक्षा दसवीं : वर्डवॉल अथवा क्विजेस ऐप के माध्यम से गेम निर्माण

प्रस्तुति : **सुनीता भाटिया**

रोटरी पब्लिक स्कूल, गुरुग्राम सदैव ही "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल" की अवधारणा को क्रियान्वित करने में विश्वास रखता है । इसी दिशा में हिन्दी भाषा के संवर्धन हेतु हिन्दी दिवस के अवसर पर विद्यालय में विभिन्न गतिविधियों का आयोजन किया गया। कविता वाचन, दोहा वाचन, पोस्टर प्रतियोगिता तथा हिन्दी भाषा के वर्चस्व पर परिचर्चा आदि गतिविधियों का सफल आयोजन किया गया ।विद्यार्थियों ने अपनी सक्रिय भागीदारी दिखाते हुए हिन्दी भाषा के प्रति अपनी सम्मान भावना को अभिव्यक्त किया । विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती संदीपा राय जी ने हिन्दी विभाग को इस आयोजन हेतु बधाई दी और विद्यार्थियों के प्रयासों की सराहना की ।

प्रस्तुति : **मीनाक्षी शर्मा**
रोटरी पब्लिक स्कूल

भारत को एकता के सूत्र में पिरोने वाली मिठास भरी हिन्दी भाषा के महत्त्व को बताते हुए एपीजे स्कूल, साकेत में हिन्दी दिवस को बहुत उत्साह के साथ मनाया गया । छात्रों ने कविता पाठ, नारा लेखन, अनुच्छेद लेखन आदि गतिविधियों और प्रतियोगिताओं में भाग लिया। शिक्षकों ने हिन्दी भाषा के महत्त्व से छात्रों को परिचित कराते हुए हिन्दी संसार और साहित्य में समाहित जीवन मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा दी।

हिन्दी जन-जन की भाषा है, निज संस्कृति का गान है ।
इसको अपनाने में फिर, क्यों घटता अपना मान?
एक दिवस मना कर, औपचारिकता नहीं निभाएँ
निज भाषा निज गौरव समझें, भारत की शान बढ़ाएँ।
मीठी भाषा प्यारी हिन्दी, इस पर भी इठलाएँ ।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की नि: शुल्क सभाकक्ष योजना

साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन हेतु नि:शुल्क 'सभाकक्ष' उपलब्धता संबंधी महत्त्वपूर्ण सूचना :-

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा लेखकों, साहित्यकारों, शिक्षाविदों, साहित्यिक/सांस्कृतिक संस्थाओं के लिए साहित्यिक कार्यक्रमों जैसे पुस्तक लोकार्पण, पुस्तक परिचर्चा, काव्य गोष्ठी, विमर्श, संगोष्ठी, सम्मान समारोह आदि के लिए अकादमी का 'सभाकक्ष' नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एक स्ववित्तपोषित संस्था है जो अपने सीमित संसाधनों से विभिन्न योजनाओं का कार्यान्वयन करती है। अपने कार्यों को विस्तार देते हुए अकादमी ने रोहिणी, दिल्ली में एक कार्यालय बनाया है, जिसमें अन्य सुविधाओं के साथ ही 65-70 व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था वाला सुसज्जित वातानुकूलित सभाकक्ष भी बनाया गया है। इस हॉल में मंच, पोडियम, माइक आदि की व्यवस्था है। अकादमी की केंद्रीय समिति ने निर्णय लिया है कि अकादमी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति संवर्धन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता एवं नैतिक जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए कार्यालय स्थित सभागार को साहित्यिक आयोजनों हेतु नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा।

सभाकक्ष में कार्यक्रम आयोजन हेतु सामान्य नियमावली-

1. सभाकक्ष सीमित समयावधि के लिए पूर्णतया नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा ।

2. सभाकक्ष की नि:शुल्क बुकिंग 'पहले आओ-पहले पाओ' और उपलब्धता के आधार पर की जाएगी।

3. आयोजन के लिए लिखित रूप/ईमेल द्वारा, कार्यक्रम के विवरण सहित आवेदन करना होगा तथा आयोजन अवधि में पूर्ण अनुशासन बनाये रखने की सहमति देनी होगी।

4. सभाकक्ष में केवल साहित्यिक आयोजनों की ही अनुमति होगी और अकादमी की केंद्रीय समिति का निर्णय ही अंतिम माना जाएगा।

नोट :- नि:शुल्क सभाकक्ष की बुकिंग के लिए संपर्क करें :-

सुधाकर पाठक

अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी,
प्लाट 19-20, पॉकेट बी-5, सेक्टर 7, रोहिणी,
(निकट रोहिणी पूर्व मेट्रो स्टेशन) दिल्ली-110085

ईमेल: hindustanibhashabharati@gmail.com
Info@hindustanibhadhaakadami.com
मोबाइल- 9873556781 / 9968097816

वेबसाइट : www.hindustanibhashaakadami.com

रिपोर्ट

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एवं व्यंग्य यात्रा के संयुक्त तत्वावधन में सम्पन्न हुआ 'व्यंग्य उत्सव'

शुक्रवार, 19 नवंबर, 2021 को रोहिणी, दिल्ली स्थित हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के सभाकक्ष में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एवं व्यंग्य यात्रा के संयुक्त तत्वावधान में 'व्यंग्य उत्सव'आयोजन सम्पन्न हुआ। साहित्य की अन्य विधाओं के समानांतर व्यंग्य विधा को आगे बढ़ाने तथा नए उभरते हुए व्यंग्यकारों को मंच एवं प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से व्यंग्य उत्सव को आयोजित किया गया। दो सत्रों में विभाजित कार्यक्रम के प्रथम सत्र की अध्यक्षता के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार एवं व्यंग्य यात्रा त्रैमासिक पत्रिका के संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय, मुख्य अतिथि के रूप में प्रो. राजेश कुमार,पूर्व निदेशक, ओपन स्कूल, लेखक एवं व्यंग्यकार श्री लालित्य ललित एवं गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के उप संपादक डॉ. धनेश द्विवेदी मंचासीन थे, तो वहीं हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के यशस्वी अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक जी का सानिध्य रहा। दीप प्रज्ज्वलन से कार्यक्रम को विधिवत रूप से शुभारम्भ किया गया । अपने स्वागत वक्तव्य में श्री सुधाकर पाठक जी ने उपस्थित श्रोताओं एवं अतिथियों को हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के उद्देश्यों, गतिविधियों एवं योजनाओं से अवगत कराया साथ ही हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं की स्थिति, उनकी समस्याओं और विडम्बनाओं पर बहुत ही गंभीर और तार्किक विषयों को उठाया । मंचासीन अतिथियों ने व्यंग्य विधा की बारीकियों, शिल्प-सामर्थ्य, सौन्दर्यता, समकालीन साहित्य में व्यंग्य की उपस्थिति और उसकी सार्थकता जैसे महीन विषयों पर अपने विचार रखें साथ ही प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाओं का पाठभी किया । लालित्य ललित द्वारा संचालित व्यंग्य सत्र में श्री रण विजय राव ने अपने प्रभावी व्यंग्य रचना से समां बांध दिया ।

समाज शास्त्रियों के अनुसार भाषा, साहित्य और संस्कृति किसी भी देश की महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं और इन तीनों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । इनमें से किसी भी एक अंग का क्षरण होता है तो बाकी बचे अंग भी स्वत: क्षरण होते चले जाते हैं । यदि हमें भाषाओं का संरक्षण करना है तो साहित्य और संस्कृति को भी साथ लेकर चलना होगा; साहित्य का संरक्षण करना है तो भाषा और संस्कृति को भी साथ लेकर चलना अत्यावश्यक है। इन्हीं अंतर्संबंधों को आत्मसात करते हुए हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार के साथ-साथ वार्षिक रूप में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आयोजन भी करती रहती है । उसी कड़ी में व्यंग्य उत्सव का आयोजन किया गया । ज्ञात हो कि इससे पहले वाराणसी में भी हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ने भव्य रूप में व्यंग्योत्सव का आयोजन किया था ।

कार्यक्रम के द्वितीय सत्र में काव्य पाठ रखा गया था जिसका संचालन युवा कवि श्री ज्ञानेन्द्र वत्सल ने किया । मंचासीन अतिथियों में कथाकार एवं लेखिका श्रीमती यति शर्मा, हिन्दुस्तानी भाषा भारती पत्रिका की सम्पादकीय सलाहकार डॉ. वनीता शर्मा, कवियत्री श्रीमती नोरिन शर्मा एवं श्रीमती सुषमा पाण्डेय उपस्थित थीं। इण्डिया नेट बुक्स के महानिदेशक डॉ. संजीव कुमार ने अपनी बेहतरीन कविता पाठ से उपस्थित श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध किया तो वहीं मंचासीन अतिथियों के साथ प्रतिभागी कवियों ने भी अपनी-अपनी प्रतिनिधि रचनाओं का काव्य पाठ किया । बेहतरीन गजल गायक राम श्याम हसीन, श्री विनोद पाराशर एवं श्री विजय शर्मा ने अपनी उपस्थिति से कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई।

इस अवसर पर हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के कार्यसमिति के पदाधिकारियों में सर्वश्री विजय शर्मा, पुलकित खन्ना, डॉ. सोनिया अरोड़ा विशेष रूप से उपस्थित थीं।

रिपोर्ट

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की 'नि:शुल्क सभाकक्ष योजना' के तहत निकष प्रकाशन द्वारा प्रकाशित

डॉ. श्रद्धा बाजपेई की पुस्तक 'छिन्नमस्ता' का लोकार्पण एवं आगमन समूह द्वारा 'आगमन काव्य गोष्ठी' का भव्य आयोजन

'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' द्वारा गाँधी जयंती के अवसर पर साहित्यिक आयोजनों हेतु 'नि:शुल्क सभाकक्ष योजना' की आधिकारिक घोषणा की गई थी। इस तरह की योजना को सामने लाना वास्तव में ही एक प्रशंसनीय कार्य है।एक स्ववित्तपोषित संस्था द्वारा किया गया यह प्रयास अपने स्वरूप में भले छोटा हो किन्तु इसकी गूंज बहुत दूर तक जाएगी, ऐसा विश्वास है। आज हर क्षेत्र में व्यवसायीकरण हावी हो रहा है जिससे दुर्गम क्षेत्र एवं पिछड़े तबकों से आने वाले साहित्यकारों, लेखकों एवं नवांकुरों के लिए अपनी प्रतिभा को समाज के सामने लाना बहुत ही कठिन और अत्यधिक व्ययशील होता जा रहा है।पहली बात तो बड़े प्रकाशक नवांगतुको की रचनाओं को प्रकाशित करने को तैयार नहीं होते हैं, तो लेखकों को बाहर से अपने खर्चे पर पुस्तकों को प्रकाशित करना पड़ता है । दूसरी ओर पुस्तक प्रकाशित करने के बाद लोकार्पण के लिए भी विभिन्न संस्थाओं द्वारा सभागार के लिए मोटी राशि ली जाती है जो कि एक लेखक एवं साहित्यकार के लिए उनके संसाधन से बाहर की बात होती है। इस तरह महंगे होते जा रहे सभागार के कारण स्तरीय लेखकों का लेखन कहीं न कहीं रुक जाता है।ऐसे समय में नए लेखकों, प्रतिभाओं एवं साहित्यकारों के बीच एक सहयोगी मंच स्थापित करने के उद्देश्य से हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी 'नि:शुल्क सभाकक्ष योजना' को सामने लाई है ।

इसी योजना के तहत अकादमी के सभाकक्ष में दो आयोजन सम्पन्न किए गए । पहले आयोजन के रूप में शनिवार 16 अक्टूबर, 2021कोनिकष प्रकाशन द्वारा प्रकाशित शिक्षाविद व साहित्यकार डॉ. श्रद्धा बाजपेई की पुस्तक छिन्नमस्ता: 'औरत की उत्कट जिजीविषा का दस्तावेज' का लोकार्पण समारोह किया गया । इस समारोह में मंचासीन अतिथियों के रूप में डॉ. रवि शर्मा मधुप, साहित्यकार एवं अध्यक्ष श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, वरिष्ठ साहित्यकार श्रीमती सविता चड्ढा जी एवं हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक जी उपस्थित थे। दीप प्रज्ज्वलन एवं सरस्वती वंदना से कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया । मंचासीन अतिथियों ने अपने उद्बोधन में अकादमी की इस योजना को सराहा तथा लेखिका डॉ. श्रद्धा बाजपेई को उनकी नवीन कृति के लिए शुभकामनाएं प्रेषित की । स्वागत वक्तव्य एवं अतिथियों के उद्बोधन के बाद काव्य पाठ कार्यक्रम को सुचारू रूप से आगे बढ़ाया गया । प्रकाशक एवं आयोजक डॉ. सत्यवीर सिंह ने इस सफल आयोजन के लिए धन्यवाद ज्ञापन किया साथ ही अकादमी की इस महत्ती योजना एवं अन्य गतिविधियों की भी सराहना की । समारोह में अकादमी की पदाधिकारी श्रीमती सरोज शर्मा, कवि श्री विनोद पाराशर, युवा कवि ज्ञानेन्द्र वत्सल सहित कई गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

राजकुमार श्रेष्ठ

इसी तरह रविवार, 17 अक्टूबर, 2021को अकादमी के सभाकक्ष में आगमन समूह द्वारा'आगमन काव्य संगोष्ठी'का आयोजन सम्पन्न किया गया । कार्यक्रम की अध्यक्षता के रूप में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक, मुख्य अतिथि के रूप में लेखक एवं व्यंग्यकार श्री सुभाष चन्दर मंचासीन थे । विशिष्ट अतिथियों के रूप में श्रीमती सूक्ष्म लता महाजन, श्री अशोक गुप्ता, श्री समोद सिंह चरौरा, डॉ. महेंद्र शर्मा एवं डॉ. नीलम वर्मा उपस्थित थीं। आगमन समूह के संस्थापक श्री पवन जैन के मार्गदर्शन में आयोजित इस काव्य संगोष्ठी में श्री सुभाष चन्दर जी को स्मृति चिन्ह, अंग वस्त्र, मोतियों की माला एवं विशिष्ट सम्मान पत्र भेंट कर सम्मानित किया गया । इस काव्य संगोष्ठी में दिल्ली एवं एनसीआर के युवा कवियों की भागीदारी ने कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। कार्यक्रम का संचालन सुश्री कंचन पाठक द्वारा किया गया ।

भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन के क्षेत्र में अकादमी की ऐसी प्रतिबद्धता को साहित्यिक जगत में सराहा जा रहा है। हमें लगातार लेखकों, साहित्यकारों, विद्वानों, बुद्धिजीवियों एवं विभिन्न साहित्यिक/सांस्कृतिक संस्थाओं की ओर से सकारात्मक प्रतिक्रियाएं प्राप्त हो रही हैं ।अकादमी के सभाकक्ष में आयोजन हेतु कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम सूचीबद्ध हैं जिन्हें आगामी दिनों में क्रमबद्ध रूप में आयोजित किए जाएंगे।

आगमन समूह द्वारा 'आगमन काव्य गोष्ठी' एवं पुस्तक लोकार्पण के कुछ छायाचित्र

शिक्षा में हिन्दी भाषा का महत्व

मणि बेन द्विवेदी

भाषा और शिक्षा के बीच गहरा संबंध होता है। बच्चे भाषा के माध्यम से ही शिक्षा को ग्रहण करते हैं । भारत-पर्व-त्यौहार और विविधताओं का देश है जहाँ विभिन्न प्रकार की भाषाएं बोली जाती हैं । कहते हैं कि कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर वानी (वाणी) यहां सभी भाषाओं को परिभाषित करना संभव तो नहीं है क्यूंकि थोड़े से शब्दों और बोलने के तरीके से भाषा और भाव बदल जाते हैं। लेकिन हर प्रदेश हर राज्य की भाषा में थोड़ा बहुत अंतर जरूर पाया जाता है । इसलिए इन्हें परिभाषित नहीं किया जा सकता है । लेकिन 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में 1,652 मातृभाषा को बोलने में प्रयोग किया जाता था।परंतु 1971 के जनगणना के अनुसार केवल 108 भाषाओं को ही भारत की भाषाओं में शामिल किया गया और जो कुछ भाषाएं बहुत कम लोगों के द्वारा बोली जाती थी उन्हें सूची से अलग कर दिया गया। एक लाख से ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली सात भाषाएं पाई गई। दस हजार लोगों से ज्यादा बोली जाने वाली भाषा 122 पाई गई। भाषा का बहुत गहरा सम्बन्ध होता है बच्चों के भविष्य निर्धारण पर। कई बार हमें उस जगह या उस प्रांत की भाषा को समझने में भरी कठिनाई होती है, कुछ भी समझ नहीं आता । अत: भारी समस्या होती है अपनी बात कहने और समझने में। भाषाओं का ज्ञान हमारे सुदृढ़ व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होता है। अधिक से अधिक भाषा का ज्ञान बच्चों में आत्म विकास का निर्माण करता है। विभिन्न भाषाओं का ज्ञान बच्चों के भविष्य निर्माण में भी सहायक होते हैं।

हम सब के अंत:करण को निखार कर ज्ञान को उत्कृष्ट और शुचि बनाने में शिक्षा का अहम स्थान है। भाषा हमारे ज्ञान को परिमार्जित कर व्यक्ति को पूर्ण रूप से विकास के मार्ग पर चलने को प्रेरित करती है। हमारे संस्कार को निखार कर हमें ना केवल बुद्धिमान अपितु सामाजिक समन्वय स्थापित करने का पाठ भी पढ़ाती है।यानी एक शिक्षित व्यक्ति ही शिक्षित समाज का निर्माण करता है। क्योंकि शिक्षा के बिना मनुष्य पशु समान हो जाता है। जहां शिक्षा प्रतिभाओं को विकसित कर मनुष्य को पूर्ण बनाती है वहीं शिक्षाव्यक्ति केउत्तम चरित्र के निर्माण में भी सहायक होती है। शिक्षा के क्षेत्र में भाषा की अहम भूमिका होती है। हमारा निजी व्यावहारिक जीवन हो या फिर शिक्षा का क्षेत्र हो भाषा के बिना सब कुछ असंभव है। शिक्षा के प्रथम सोपान पर कदम रखते हैं हमारी मातृभाषा की अहम भूमिका होती है। फिर जैसे-जैसे बच्चे ऊंचे कक्षाओं में प्रवेश करते हैं शिक्षा में भाषा भी परिवर्तित होता जाता है। जहां हमारी मातृभाषा हमें अपनी सांस्कृतिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से समृद्ध बनाती है वहीं अंग्रेजी भाषा बच्चों को कार्य के क्षेत्र में प्रवीण बनाते हैं। जीविकोपार्जन के लिए जब व्यक्ति को अनेक राज्यों शहरों यहां तक कि विदेशों में भी जाना पड़ता है तब हमें विभिन्न भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक होता है। लेकिन हमारे देश की ये दुखद विडम्बना है कि हिन्दी और मातृभाषा के ज्ञान के अतिरिक्त अगर अंग्रेजी में बच्चा माहिर ना हो तो उसे तमाम तरह की प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। अंग्रेजी भाषा का इतना दबाव होता है कि बच्चे कॉलेज की पढ़ाई छोड़ कर घर वापस आ जाते हैं कुछ बच्चे तो अवसाद ग्रस्त हो कर जान भी गंवा देते हैं। जो आज राष्ट्र के लिए निंदनीय और चिंता का विषय बना हुआ है । आज की परिस्थिति को देखते हुए छोटे बच्चों के नामांकन के समय जब माता-पिता का भी साक्षात्कार होता हैं यह देखने के लिए कि माता-पिता बच्चों को घर में पढ़ा सकते हैं या नहीं वहां फिर क्या किया जाए। हमारे देश की विडम्बना ही कहेंगे कि आजादी के बाद भी हम अंग्रेजी से आजाद नहीं हो पाए और आज भी विदेशी भाषा की बेड़ी पैरों में बांधे घूम रहे हैं और हमारी हिन्दी कहीं न कहीं अपने देश में ही अपना स्थान नहीं बना पा रही है। ये हिन्दी और हिन्दवासी के लिए अति चिंता का विषय है। आज हम देख रहें की अंग्रेजी का वर्चस्व इस कदर छा गया है कि अब बच्चे हिन्दी के शब्द नहीं समझ पाते । गिनती पहाड़ा भी हिन्दी में उन्हें दुष्कर लगता है।हिन्दी उत्थान का सपना कहीं ना कहीं दब कर अपनी दुर्गति पर सिसक रहा है।गुलामी से आजाद हुए किन्तु नीति निर्धारकों द्वारा अंग्रेजी की गुलामी में झोंक दिया गया। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना कर। इसे हम हिन्दी भाषा का दुर्भाग्य ही कहेंगे। जहां हिन्दी भाषा हमारे ऋषियों की सांस्कृतिक विरासत है। हमारे सारे वेद पुराण गीता रामायण हिन्दी में सृजित है वहीं हम अंग्रेजी का बोझा ले कर ढोने को मजबूर हैं जो आज अंग्रेजी भाषा हमारी हिन्दी को छल रही है और हम परिस्थिति के वशीभूत होकर अपनी मातृभाषा और हिन्दी भाषा से अपने बच्चों को भी वंचित कर रहें हैं। जरूरत है कि अति शीघ्र हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिले और मातृभाषा को शिक्षा प्रणाली से जोड़ कर विषय अनुरूप कक्षा में पढ़ाया जाए तो बेहतर परिणाम देखने को मिल सकता है। अत: हिन्दी और अपनी मातृभाषा के साथ ही अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो तो असर व्यापक देखने को मिलेगा। हिन्दी भाषा के साथ अन्य भाषाओं का ज्ञान भी बच्चों के आत्मविश्वास को प्रबल करके उन्हें ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी बनाते है। भाषा का समुचित ज्ञान होना और विविध भाषाओं का ज्ञान होना बच्चों के लिए अति आवश्यक है।

शिक्षा में हिन्दी को अपनाना है निज परिवेश बचाना है।

कई विद्यालय में अपनी मातृभाषा में बोलने गाने के लिए या फिर सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने की स्वीकृति नहीं मिलती उन्हें वर्जित कर दिया जाता है, जहां बच्चे हतोत्साहित होते हैं और अपने निजी परिवेश सांस्कृतिक विरासत से वंचित रह जाते हैं और

मजबूरी में बच्चों को अंग्रेजी भाषा को अपनाना पड़ता हैऔर वो अपनी सांस्कृतिक विरासत से कहीं ना कहीं कट जाते हैं, विलग हो जाते हैं।

एक सार्थक और सराहनीय कदम

एक सार्थक और सराहनीय कदम उठाते हुए हमारे माननीय प्रधान मंत्री मोदी जी ने और शिक्षा मंत्री मानव संसाधन विकास मंत्री रमेशचन्द्र पोखरियाल निशंक जी के द्वारा 2020 में नई शिक्षा नीति को जारी करते हुए प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा को स्थान दिलवाए, जो नई पीढ़ी के लिए अपनी विरासत से जुड़े रहने का वरदान है। देश के भविष्य के लिए सराहनीय पहल के लिए हृदय तल से आभार व्यक्त करती हूँ। भाषा को सांस्कृतिक ढांचे में ढालने के लिए हिन्दी के साथ ही बाजार को भारतीय भाषाओं को स्वीकार करना होगा तब कहीं जाकर हमारी भाषा को स्थान मिलेगा विश्व के बाजारों में ।

शिक्षा नीति में उचित नियम और सार्थक पहल आवश्यक

बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए एक मत हो कर आज सरकार, परिवार, माता-पिता सभी का सहयोग अपेक्षित है। निजी लाभ के लिए बच्चों के भविष्य से जो खिलवाड़ हो रहा है उसे हटा कर शैक्षणिक दृष्टिकोण को अपना कर नई शिक्षा नीति लागू करें और सार्थक पहल के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में उचित बदलाव लाकर आज के बच्चे कल के भारत के भविष्य हैं, उनके साथ न्याय हो, उन्हें उचित शिक्षा दी जाए ताकि भारत का लोकतांत्रिक और सांस्कृतिक विकास हो सके।

बच्चों की उचित शिक्षा घर से प्रारंभ हो

हिन्दी और अपनी मातृभाषा का ज्ञान हमें स्वयं ही घर से सीखना होगा। हमें अपने बच्चों में खुद ही संस्कृति और संस्कार के बीज बोने होंगे । धार्मिक पुस्तकों को बचपन से ही पढ़ने की प्रेरणा देना उन्हें शिक्षाप्रद कहानियों के माध्यम से महापुरुषों का परिचय कराना, अपनी प्राचीन सभ्यता, ऋषि मुनियों के विषय में जो हमारे पूर्वज रहे उनके विषय में घरों में एक वृहद और सार्थक चर्चा प्रतिदिन होनी चाहिए ताकि हमारी नई पीढ़ी पश्चिमी सभ्यता के परिवेश से सजग हो जाए और खुद को बचा सके।

-मणि बेन द्विवेदी
वाराणसी (उ.प्र.)

शिक्षक की कलम से

धर्मेन्द्र पोद्दार

मेरे विचार से विद्या दान जैसा पुनीत कर्म इस संसार में दूसरा और हो ही नहीं सकता । क्योंकि यह ना केवल शिक्षार्थियों को अज्ञानता से मुक्ति दिलाता है, बल्कि उसे ज्ञानदान देकर सभ्य समाज का कर्णधार अथवा हिस्सा भी बनाता है । इस दृष्टिकोण से जब मैं आज के विद्यार्थियों के बदलते स्वरूप को देखता हूँ, तो मेरे मस्तिष्क में कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि बदलते समय के साथ शिक्षार्थियों अथवा विद्यार्थियों में उच्छृंखलता, अशिष्टता, अभद्रता, उद्दंडता, अमर्यादित कृत्यों में संलिप्तता आदि के क्या कारण हो सकते हैं ? क्या वर्तमान परिस्थिति इसके लिए जिम्मेदार है ? या विदेशियों के नकल करने की प्रवृत्ति इसके लिए जिम्मेदार है ? धन कमाने की होड़ ने माता-पिता अथवा अभिभावकों का ध्यान अपने बच्चों की गतिविधियों से बिल्कुल हटा दिया है ? जिसके परिणामस्वरूप दिन-प्रतिदिन विद्यार्थियों में संस्कार और संवादहीनता के कारण एक ऐसा युवा पीढ़ी तैयार हो रहा है, जो मार्ग विहीन होता जा रहा है । यदि समय रहते इस विषय पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया, तो आने वाले समय में इसके दुष्परिणाम अवश्य उभरकर सामने आएँगे।

वैसे शिक्षा ग्रहण करने के क्रम में, आर्थिक तंगी के कारण मैंने उच्च शिक्षा के लिए वर्ष 1992-93 में बच्चों को पढ़ाना प्रारंभ कर दिया था । तब से अब तक तकरीबन 3 दशक के छात्रों में परिलक्षित परिवर्तन के आधार पर मैंने अध्ययन करते हुए पाया कि वर्ष 1992 से 1995 तक के 10 वीं से 12 वीं श्रेणी के एवं स्नातक तक के छात्रों में अपने गुरुजनों, माता-पिता एवं समाज के प्रति उच्च एवं आदर्श भावनाएं थी । वहीं वर्ष 1995 से 2000 तक के छात्रों में शिष्टाचार का न्यूनतम ह्रास हुआ, किंतु उनका व्यवहार संतोषजनक एवं स्वीकार्य है । वर्ष 2005 से 2010 तक के छात्रों में उद्दंडता, उच्छृंखलता, अशिष्टता और अभद्रता में लगातार वृद्धि हुई । वर्ष 2010 से 2015 तक विद्यार्थियों के स्वभाव में परिवर्तन देखा गया और उनकी अवस्था के क्रमिक विकास में भी वृद्धि हुई । वर्ष 2015 से 2020 तक उनके उद्दंडता का क्रमिक विकास लगभग संतुलित था । किंतु वर्ष 2020 और 21 के बीच विद्यार्थियों के स्वभाव में, उनके आचरण में, अभूतपूर्व परिवर्तन हुए। उनमें सद्गुणों के प्रति रुचि, ग्रहण क्षमता, ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ कुबुद्धि में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है, जो आने वाले भविष्य के लिए, उनके लिए, उनके परिवार के लिए तथा समाज के लिए चिंता का विषय बन सकता है ।

यदि समय रहते देश के भावी कर्णधारों, विद्यार्थियों के इस बदलते स्वरूप पर माता-पिता, अभिभावकों, शिक्षकों और समाज ने ध्यान नहीं दिया तो छात्रों एवं देश का भविष्य आचरण हीनता के कारण पथभ्रष्ट हो सकता है ।

-धर्मेन्द्र पोद्दार
भाषा विभाग प्रमुख सेक्रेड हार्ट स्कूल, सिलीगुड़ी

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

सम्पादक मण्डल एवं केन्द्रीय कार्य समिति

सुधाकर पाठक
अध्यक्ष एवं सम्पादक

विजय कुमार शर्मा
प्रबन्ध सम्पादक

सुरेखा शर्मा
परामर्श सम्पादक

राजकुमार श्रेष्ठ
संयुक्त सम्पादक

सागर समीप
सह सम्पादक

सरोज शर्मा
उप सम्पादक

सुषमा भण्डारी
उप सम्पादक

डॉ. सोनिया अरोड़ा
उप सम्पादक

पुलकित खन्ना
उप सम्पादक

डॉ. वनीता शर्मा
सम्पादकीय सलाहकार

गरिमा संजय
सलाहकार

भारतीय भाषा सेवियों, शिक्षकों, शोधार्थियों एवं पत्रकारों के लिए अनमोल पुस्तकें

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

चार पुस्तकों का
कुल मूल्य
600/-
(डाक खर्च अलग)

सम्पादक

सुधाकर पाठक
अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

अपनी प्रति आज ही बुक करायें ।

सम्पर्क करें :

राजकुमार श्रेष्ठ

मोबाइल : 8802683040

E-mail : hindustanibhashabharati@gmail.com

RNI No. : DELHIN/2017/73904

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

पंजीकृत कार्यालय : 3675, राजा पार्क, रानी बाग, दिल्ली-110034

दूरभाष : 09873556781, 09968097816

E-mail : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
Website : www.hindustanibhashaakadami.com